## स्तोत्रों का आधुनिक रूप एवं प्रवृत्ति

आधुनिक युग राष्ट्रीय आन्दोलन का युग कहा जाता है । युग के साथ साहित्य के मान-दंड भी परिवर्तित हुए हैं । आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी इस विषय में अपने आधुनिक-साहित्य में लिखते हैं----- "नई कला इस दृष्टि से अधिक कल्पना-प्रवण, अधिक संवेदनाशील और अधिक मानवीय हो चली । वह जीवन व्यवहारों में वैयक्तिक स्वातंत्र्य और तज्जनित अनुभूति का आदर करने लगी। इसी प्रकार मध्य कालीन काव्य-कला-पद्धति में धार्मिक प्रभाव से कतिपय रूढ़ियां बन गई थीं । कृष्ण और गोपियों के चरित्रों की अलौकिकता की आड़ में घोर श्रृंगारिकता पनप रही थी । समाज के धार्मिक वातावरण में इसे पूर्ण स्वीकृति भी मिल गई थी । फलतः भक्ति-काव्य के पिछले सेवे में श्रृंगारिकता की भरमार हो गई । दूसरी ओर राम के चरित्र का अलौकिक पहलू भी सीमा पार कर अतिशय अतिरंजित और सौंदर्य-हीन हो गया । भक्ति की ये दोनों ह्रासोन्मुखी काव्य-धारायें आगे चलकर रीति-काव्य में परिणत हो गईं और तब काव्य के विषय वर्णन शैली और अन्य उपादान एक घेरे में बंध गए । कविता जीवन से अत्यन्त दूर जा पड़ी - केवल काव्य- रसिकों को उसमें अलौकिक रस मिलता रहा । नए युग में आकर ये सारी रूढ़ियां टूटने लगीं ।"[१] इस काल में काव्य के नवीन विचार भाव एवं सिद्धान्त बदल गये । ईश-प्रार्थना के साथ साथ मातृभूमि प्रार्थना प्रारम्भ हुई और दार्शनिकता का स्थान राष्ट्रीयता ने ले लिया । आज के राम-कृष्ण सामयिक परिपाटी के नेता बन गए। जब इस प्रकार की विचारधारा समाज में आई तो काव्य एवं अन्य रचनाओं पर उनका प्रभाव भी पड़ा । बौद्धिक जागरण के साथ- साथ जनता में आदर्शवाद की भावना का निर्माण हुआ । ~~अभी तक जन-जीवन रीतिकालीन अश्लीलता एवं श्रृंगारिकता में निमग्न था । उसने उसी निर्मोक को उतार फेंका और सत की ओर अग्रसर हुई~~ । काव्य में इसकी प्रतिष्ठा हुई जिससे उदात्त संदेश,

---

१- आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी -- आधुनिक-साहित्य पृ० १६-१७

आदेशात्मक एवं उपदेशात्मक कोटि की कविता का समावेश हुआ ।[1] इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ जनता एवं कवि बल की भी अनुभूति करने लगे । महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों में उनकी इस भावना का अच्छा अनुभव होता है । मानव ने अपने आन्तरिक दर्पण-पट पर विश्व-रंगमंच की प्रत्येक गतिविधि को अपनाना प्रारम्भ किया। भारतेन्दु, प्रसाद, हरिऔध एवं मैथिली शरण आदि कवि इसी विचारधारा को लेकर आगे बढ़े और राष्ट्रीय-भावना के साथ-साथ भक्ति-भावना के प्रदर्शन में भी रत हो गए । शिवदानसिंह चौहान ने इस विषय में अपना उचित ही विचार स्पष्ट किया है ----'मध्यकालीन दृष्टिकोण में व्यक्ति की महत्ता और शक्ति संभावना में आस्था थी तो स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण से मनुष्य और वस्तुजगत में चिरस्थायी संघर्ष और विरोध का विश्वास था । इस प्रकार वास्तविकता और उसके सत्य की खोज से विमुख होकर वास्तविकता से ही पलायन करने की चेष्टा करना यथार्थवादी दृष्टिकोण से स्वच्छंदतावादी दृष्टि कोण की ओर संक्रमण है ।[2]

समस्त आधुनिक काल चार भागों में विभक्त किया जा सकता है:---

१- भारतेन्दु युग (सं० १९२५-१९५०)
२- द्विवेदी युग (सं० १९५०-१९७५ )
३- छायावाद युग (सं० १९७५-१९९५)
४- वर्तमान काल (सं० १९९५- .. )

## भारतेन्दु युग का स्तोत्र-साहित्य :

इस काल का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू से माना जाता है । उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन का सामंजस्य कर एक नवीन कलात्मक भावधारा का प्रवर्तन किया था । आचार्य शुक्ल ने उनके विषय में लिखा है ---'अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा

---

१- डा० प्रतिपाल सिंह -- बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य पृ० ७७

२- डा० शिवदानसिंह चौहान-- हिन्दी-साहित्य के अस्सी वर्ष पृ० ३१

में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उड़ाते और स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर समान्जस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए-नए या बाहरी भावों को पचाकर इस प्रकार मिलाना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें। प्राचीन-नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु जी का उदय हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं।[1] भक्ति भावना के अतिरिक्त उन्होंने स्वदेश-प्रेम का वह नवीन मंत्र जन-मानस तक पहुंचाया जिससे देवी-देवताओं के साथ-साथ भारत माता का भी यशोगान प्रारम्भ हुआ। अपनी देश-प्रेम से ओत-प्रोत रचनाओं में उन्होंने अतीत का गर्व, वर्तमान के अधोगति की वेदना तथा भविष्य के नवीन विचारों का समावेश किया है। इस प्रकार इस काल के उपलब्ध स्तोत्र-साहित्य में यह भावधारा पूर्ण रूपेण विकसित हुई जिसका विवेचन नीचे किया जा रहा है।

भारतेन्दु जी की स्वतंत्रात्मक रचनाओं में राम-सीता, राधा-कृष्ण, कवि सम्प्रदाय, दशावतार, ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, द्वारिका गुरु-परम्परा, गंगा, भारतमाता आदि की वन्दनाएं और स्तुतियां हैं।

<u>मंगलाचरण :</u>

अपने मंगलाचरणों में उन्होंने राधा-कृष्ण एवं दशावतारों की वन्दना की है। गीत गोविन्द[2] एवं मधुमुकुल[3] में इसके अनेक उदाहरण हैं। ये

---

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल--- हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ४२४-४२५

२- वेद-उधारन मंदर-धारन भूमि-उबारन हैं ब्रजचारी।
दैत बिनासी बलि के छलि छय-कारक छत्रिन के असुरारी।
रावन-मारन त्यों हल-धारन वेद निवारन म्लेच्छ-सुदारी।
यों दसरूप विधायक-कृष्णहिं कोटिन्ह कोटि प्रनाम हमारी ॥१२॥
गीता गोविन्द।

३- अगले पृष्ठ पर ---

नमस्कारात्मक मंगलाचरण हैं और इसमें कवि ने ग्रंथारम्भ में इन देवताओं को नमस्कार किया है ।

वंदना :

भारतेन्दु जी के वन्दनाएं तीन प्रकार की हैं । पहली प्रकार की वन्दनाएं गुरु एवं गुरु परम्परा से सम्बन्धित हैं । दूसरी प्रकार की वंदनाएं देवी-देवताओं से और तीसरी प्रकार की वंदनाएं गंगा, धन आदि पर लिखी गई हैं । स्तोत्र महत्वपूर्ण हैं ।

गुरु-वंदना :

'भक्तमाल उत्तरार्द्ध'[१] एवं 'प्रातः स्मरण स्तोत्र'[२] में इस प्रकार की वन्दनाएं हैं ।

---

३- (पिछले पृष्ठ का)
जय वृषभानु नंदिनी राधे मोहन प्रान पियारी ।
जै श्री रसिक कुंवर नंदनंदन सुंदर गिरिवर धारी।।
जै श्री कुंज नायिका जै जै कीरति कुल उजियारी ।
जै वृन्दावन-चारु-चन्द्रमा कोटि-मदन-मद-हारी ।।
जै व्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ा मनि सखियन मैं सुकुमारी।
जयति गोप-कुल-सीस-मुकुट-मनि नित्य-विहार-बिहारी।।
जयति वसन्त जयति वृन्दावन जयति खेल सुखकारी ।
जय अद्भुत जगनावर्थ शुक मुनि 'हरीचंद' बलिहारी । --मधु-मुकुल ।

१- तन्न मामि निज परम गुरु कृष्ण कमल-दल-नैन ।
जाको मत श्री राधिका नाम जपत दिनरैन ।।२४।।
श्री गोपीजन पद जुगल वंदत करि पुनि नेम ।
जिन जग मैं प्रगटित कियो परम गुप्त रस प्रेम ।।२५।।
श्री शिव-पद निज जानि गुरु वंदन प्रेम-प्रमान ।
परम गुप्त निज प्रगट किय भक्ति-पंथ अभिधान ।।२६।--उत्तरार्द्ध भक्तमाल ।

२- श्री वल्लभ सुमिरौं अरु श्री गोपीनाथ पियारे ।
श्री विट्ठल प्रभु जीवन जग-हित नर-वपु धारे ।।
श्री गिरिधर गोविन्द राय पुनि बालकृष्ण कहु।
गोकुल पति रघुपति जदुपति घनश्याम-भक्ति लहु ।।
लक्ष्मी-रुक्मिणि-पद्मावती-पर-रजनित सिर धारिए ।
श्री वल्लभ कुल को ध्यान मन कबहूं नाहिं बिसारिए ।।
---प्रातः स्मरणास्ति ।

उन्होंने भक्ति सर्वस्व[1], प्रेम मालिका, प्रेम सरोवर, सतसई सिंगार, राग-संग्रह, देवी छद्मलीला, विनय प्रेम पचासा,[2] प्रातः स्मरण मंगल पाठ, आदि रचनाओं में राधा-कृष्ण-विषयक वन्दनायें की हैं । जैन कुतूहल[3] में कवि ने ऋषभदेव पार्श्वनाथादि तीर्थंकरों की वन्दना की है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि वे समन्वयवादी भक्त कवि थे और उनके हृदय में प्रत्येक देवी-देवता के प्रति अपार श्रद्धा थी। राधा -कृष्ण, सीताराम, भक्त गण एवं जैनतीर्थंकरों के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं ।

---

१- जयति जयति श्री राधिका, चरण जुगल करि नेम।
जाकी छटा प्रकास तें पावत पामर प्रेम ।।१।।
--- भक्त सर्वस्व ।

याही सों घनश्याम कहावत ।
द्रवत दीन-दुरदसा विलोकत करूनारस बरसावत ।
भीगे सदा रहत हिय रससों जन-मन-ताप जुड़ावत ।
हरी चन्द से चातक जनके जिय की प्यास बुझावत ।।
---- विनय पचासा ।

२- प्रातः स्मरण स्तोत्र छंद --६

३- जय जय जयति ऋषभ भगवान ।
जगत ऋषभ बुध ऋषभधरम के ऋषभ पुरान प्रमान ।
प्रगटित-करन धरम पथ धारत, नानावेश सुजान ।
हरीचंद कोउ भेद न पायो किया यथा रुचि गान ।।२।।
तुमहि तौ पार्श्वनाथ हौ प्यारे ।
तलफन लागैं प्रान वगल तें छिनहु होहु जो न्यारे ।
तुमसों और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे ।
हरीचंद खोजत तुमहीं को वेद पुरान पुकारे ।।३।।
---जैन-कुतूहल ।

घन, गंगा, वृन्दावन, हिन्दी एवं भारतमाता की वंदनाएं :

कवि ने कृष्ण की घन[1] रूप में वन्दना की है। गंगा की वंदना में उसे जगत की आराध्यदेवी माना गया है[2]। एक स्थल पर वृन्दावन की भी वन्दना की गई है और उसके प्राकृतिक महत्व का गुण-गान किया गया है[3]। हिन्दी[4] और भारतमाता[5] की भी वन्दना की है।

स्तुति :

उनकी अधिकांश स्तुतियां, राधा-कृष्ण, श्रीनाथ एवं पुरुषोँ से सम्बन्धित है। अपनी स्तुतियों में कवि ने सांसारिक त्रयतापों आदि का

---

१- भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घनकोऊ, लखि नाचत मन मोर ।-- होली।

२- गंगा पतितन को आधार।
यह कलिकाल कठिन सागरसों तुमहि लगावत पार।
दरस-परस जल-पान किए तें तारे लोक हजार।
हरि-चरनारविंद-मकरंदी सोहत सुंदर धार।
अवगाहत नर-देव-सिद्ध-मुनि कर अस्तुति बहुबार।
हरिचंद जन-तारिनि देवी गावत निगम पुकार ।।--स्फुट पद।

३- वृन्दावन शोभाकछु बरनि न जाय मोसौं।
नीर जुमना को जहं सोहै लहरत सो।
फूले फूल चारों ओर लपटै सुगंध तैसो।
मंद गंध वाह जिय तापहि हरत सो ।।१०।।-- स्फुट कविताएं।

४- निज भाषा-उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।
---हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान।

५- हाय वहै भारत भुविभारी, सबही विधि तें भई दुखारी।
रोम ग्रीस पुनि निज बल परमो, सब विधि भारत दुखित बनाओ ।।२
--विजयनी विजय बैजयन्ती।

विवेचन किया है और कृपा की आकांक्षा की है। प्रेम-फुलवारी[1], कृष्ण-चरित्र[2], श्रीनाथ स्तुति[3], पुरुषोत्तम पंचक[4], राजेश्वरी स्तुति[5] आदि में इसी प्रकार की स्तोत्रात्मक रचनाएं हैं। राजेश्वरी की स्तुति में कवि ने महारानी विक्टोरिया की स्तुति की है किंतु इसके मूल में भक्ति-भावना नहीं है। केवल राजनीतिक उद्देश्य और अंग्रेजों के अत्याचारों से बचने के लिए ऐसा किया गया है।

प्रार्थना :

इस प्रकार के स्तोत्रात्मक पदों में आत्म-निवेदन एवं दैन्य आदि भावों की प्रधानता है। सतसई सिंगार में भारतेन्दु जी ने बिहारी के दोहों

---

१- श्री राधे मोहिं अपनो कब करि हौ।
जुगल-रूप-रस-अमित-माधुरी कब इन नैनति भरिहौ।।
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को बास वितरिहौ।
हरिचंद कब भव बूडत तें भुज धरि धाइ उबरिहौ।।१।।
--प्रेम फुलवारी।

२- नाथ विसारे ते नहिं बनिहै।
तुम बिनु कोउ जग नहिं मरम की पीर पिया जो जनिहै।।
हंसिहै सब जग हाल देखि कोउ नाहिं दीनता गनि है।
उलटी हमहिं सिखावनि दैहै मेरी एक न मनिहै।।
तुम्हरे होइ कहां हम जैहैं कौन बीच मैं एनिहै।
हरिचंद तुम बिनु दयालता और कोउ नहिं ठनिहै।।
---कृष्ण चरित्र।

३- श्री नाथ स्तुति।१

४- पुरुषोत्तम पंचक -- छंद १-५

५- श्री राजराजेश्वरी स्तुति --- छंद १-५

के भावों का पल्लवन कुंडलियों में किया है । स्तोत्र-रचना की दृष्टि से इसकी विशेषता यह है कि बिहारी के दोहे में यदि भक्ति का बीज भी विद्यमान है, तो भारतेन्दु की प्रतिभा के अभिषेक से वह भक्ति की कल्पलता में परिणत हो गया है । उदाहरण से यह सिद्ध है :-

स्याम हरित द्युति होइ परै जातनकी फाईं ।
पाय पलोटल लाल लखन सांवरे कन्हाई ।।
श्री हरिचन्द वियोग पीत पट मिलि दुनि टेरी ।
नित हरि जा रंग रंगे हरो बाधा सोइ मेरी ।।१।।
--सतसई सिंगार ।

यह बिहारी सतसई के प्रथम दोहे का रूपान्तर है[1] । 'नीलदेवी' में इसी प्रकार की प्रार्थना है । गद्य में जो आगे चलकर गद्य-गीतों की रचनाएं हुईं उनका प्रारम्भ भारतेन्दु से ही हुआ था। उनकी चन्द्रावली नाटिका में इसी प्रकार का उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है ----"तुमतो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के मांगने पर नदीनद भरदेते हो तो चातक के इस छोटे चंचु पुट भरने में कौन श्रम है क्योंकि प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भांति प्यास बुझा लेंगे हमारे तो हे श्याम घन, तुमही अवलम्बहो[3] । भारतेन्दु जी ने अनेक उपालम्भात्मक स्तोत्र भी लिखे हैं जिनमें देश-कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना की गई है ।

---

१- मेरी भव बाधा हरो नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे श्याम हरित दुति होय।।
--- बिहारी शतक ।

२- करुणानिधि केशव सोये ।
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारत वासी रोए ।
---- नील देवी ।

३- श्री ब्रजरत्नदास--- भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १--- पृष्ठ ४३४

<u>सुमिरिनी :</u>

श्री सर्वोत्तम स्तोत्र,[१] श्री सीता-वल्लभ-स्तोत्र[२] एवं प्रातः स्मरण स्तोत्र, सुमिरनी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें कवि ने राम-सीता, पूर्व भक्तों आदि का स्मरण किया है। श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र संस्कृत के वर्ण वृत्तों में है। श्री सर्वोत्तम स्तोत्र में विठ्ठलनाथ जी का स्मरण किया गया है और प्रातः स्मरण स्तोत्र में गोपीजन, द्वारिका की लीला, दशावतार, कृष्ण समुदाय, भागवत, प्राचीन भक्त, गुरू, वैष्णव आदि का स्मरण किया गया है। भारतेन्दु रचित इस प्रकार की सुमिरिनी में भक्ति भावना का मधुर एवं मार्मिक रूप है।

पहले बताया जा चुका है कि रीति काल के स्तोत्र-साहित्य में कलात्मकता एवं चमत्कार-प्रवृत्ति का प्राधान्य हो गया था, अनुभूति पक्ष निर्बल हो गया था, भक्ति-भावना का प्रवेग मंद हो गया था। भारतेन्दु जी ने अपनी स्तोत्रात्मक रचनाओं के द्वारा रीति काल के इस अभाव को दूर किया और हिन्दी-स्तोत्र परम्परा को उसका खोया हुआ गौरव प्रदान किया। उनकी स्तोत्रात्मक रचनाएं सभी दृष्टियों से भक्तिकाल के श्रेष्ठ

---

१- जयति आनंद रूप परमानंद कृष्ण मुख
कृपानिधि दैवि उद्धारकारी।
स्मृति मात्र सकल आरति हरन गूढ़
गुन भागवत अर्थ लीनो विचारी॥
छंद १--

२- तद्वन्दे कनक प्रभं किमपि जानकी धाम।
मत्प्रसादतस्सार्थं तामेति राम इति नाम॥
यो धारितः शिरसि शारद नारदाद्यैः।
यश्चैक एव भवरोग कृते विदानम्॥
यो वै रघूत्तम वशीकर सिद्ध चूर्णम्।
तं जानकी चरणरेणु मंह स्मरामि॥१॥

कवियों के समकक्ष रखी जा सकती है । इसी बात को लक्ष्य कर आचार्य शुक्ल ने उन्हें 'राधा-कृष्ण' की भक्ति में झूमते हुए कहा है । इसके अतिरिक्त उन्होंने स्तोत्र-परम्परा को भारत-माता की भक्ति के रूप में एक नवीन एवं क्रान्तिकारी विषय दिया जो आधुनिक साहित्य राष्ट्रीयता का अजस्त्र स्तोत्र बन गया । उनकी तीसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उन्होंने बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों के स्तोत्र लिखकर हिन्दू धर्म के परमोदार रूप को स्पष्ट किया । इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु हिन्दी-स्तोत्र परम्परा उद्धारक और नव जीवन प्रदाता के रूप में हमारे सामने आते हैं । हिन्दी की स्तोत्र-परम्परा में उनका स्थान तुलसी और गुरु गोविन्द सिंह जैसे महान् स्तोत्रकारों के समकक्ष है । स्तोत्रकार के रूप में भारतेन्दु अपने देश और धर्म का पूरा पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं । डा० लक्ष्मी शंकर (सागर) वार्ष्णेय ने उनके विषय में लिखा है-- "भारतेन्दु पक्के वैष्णव थे और पुराने वातावरण में पले थे । उनके चारों ओर का समाज अवनति और पतन के कर्दम में लिप्त पड़ा था । अतएव भूतकाल का बन्धन एकदम टूटने वाला नहीं था । परन्तु इतने पर भी प्रगति-शील पिता के पुत्र होने के कारण उन्होंने कविता को नई विचारधारा की ओर प्रवृत्त किया[२]।

## प्रताप नारायण मिश्र :

भारतेन्दु युग के दूसरे कवि प्रतापनारायण मिश्र हैं । इनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में देश प्रेम, सामाजिक अध:पतन और देश-कल्याण की भावना प्रमुख है । इन्होंने भी भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र की भाँति उपालम्भात्मक

---

१- धाम द्वारिका कनक भवन जादव नर-नारी ।
उद्धव, सात्यिक नारद, गरुड, सुदर्शन चारी ।।
रुक्मिनि सत्या, भद्रा, शैव्या, नाग्नजिती पुनि ।
जाम्वन्ती, लक्ष्मणा, मित्र विंदा, रोहिणि गुनि ।।
इन आदि नारि सोलह सहस इनके सुत परिवार सह ।
प्रद्युम्न पार्थ अनिरुद्ध जुत सुमिरौ दुख-नासन दुसह ।।४।।

२- डा० लक्ष्मी शंकर वार्ष्णेय--- आधुनिक हिन्दी कविता पृ० २४८

रचनायें की हैं जिनमें ब्राह्मणों के आचार-विचार, और उनकी धार्मिक भावनाओं की रक्षा के लिए भगवान् से कल्कि अवतार धारण की प्रार्थना की गई है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है :--

कोउ निज नारिन को भार मानसिक मारै ।
कोउ नर कहाय आचरण तियनकै धारै ॥
कोउ मनके धन हित धरमहिं बेचि डारै ।
कोउ हिन्दू ह्वै तुरकी पर तन मन वारै ।
करलै तिच्छन तरवारि मलिच्छन मारो ॥

----अवकसन कल्कि अवतार ०३ ।

रिषि नाहिंन जे सुखदायक पन्थ चलै हैं ।
नहिं रहे वीर जो धर्म हेतु कटि जैहैं ॥
कहं बचे धनिक जो दुख दरिद्र हरिलैहैं ।
अब तो पापी पेटहि के दास सबै हैं ॥
परतापहि केवल तव पद पदुम सहारो॥२॥[1]
अब कस न कल्कि अवतार वेगि प्रभु धारो ।

प्रतापनारायण मिश्र ने भगवान को माता-पिता, सखा सभी रूपों में मानकर प्रार्थना की है :----

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमही अब नाथ हमारे हो ।
हम दीन दुखी निवलों विकलों के तुमही अब नाथ हमारे हो ॥

----प्रताप लहरी ।

कुछ स्तोत्रात्मक रचनाओं में भगवान् के गुणों की वन्दना की गई है :--

---

१- प्रतापनारायण मिश्र- मनकी लहरी (१८८५)

सु सौंदर्य जो पुष्पका तत्व है, सुआनंद जो प्रेमका तत्व है।
कि जिसका यही सत्य आकार है, उसे ही हमारा नमस्कार है।।[१]

प्रतापनारायण मिश्र की स्तोत्रात्मक रचनाओं में भारतेन्दु युग की देश-प्रेम, जाति-उत्थान आदि भावनाएं प्रधान रूप में हैं और भक्ति-पक्ष गौण हो गया है। उनकी स्वच्छंद प्रवृत्ति की छाप पूर्णतया उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।

चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन (१६१२) :

भारतेन्दु मण्डल के दूसरे प्रसिद्ध कवियों मे `प्रेमघन` जी के साहित्य में अनेक स्तोत्रात्मक रचनाएं हैं। इन रचनाओं में कवि ने राधा, कृष्ण, सूर्य, मातृ-भूमि, हिन्दी, चपला एवं भारत की नारियों की वंदनायें एवं स्तुतियां लिखी हैं। इस प्रकार प्रेमघन जी की रचनाओं में हिन्दी-स्तोत्रों के जो रूप विद्यमान हैं, इस प्रकार हैं ---

मंगलाचरण, वंदना, स्तुति, प्रार्थना एवं सुमिरिनी।

मंगलाचरण :

'प्रेम-पीयूष-वर्षा' नामक रचना में कवि ने राधा-कृष्ण का मंगलाचरण किया है। इस में मंगलाचरण की ध्यानात्मक प्रवृत्ति व्यवहृत हुई है।[२]

वंदना :

अनेक रचनाओं में कृष्ण, राधा, मातृभूमि एवं भारतीय महिलाओं

---

१- प्रतापनारायण मिश्र--- प्रताप लहरी, पृष्ठ २५६।

२- लसत सुरंग सारी हिय हीरक हार अमंद।
जय जय रानी राधिका सह माधव बृजचंद ।।
नवल भामिनी दामिनी सहित सदा घनस्याम।
बरसि प्रेम पानीय हिय हरित करो अभिराम ।।
यह पियूष वर्षा सरस लहि शुभ कृपा तदीप।
सांचहु सन्तोषैं रसिक चातक कुलकमनीप ।।

---- प्रेम पीयूष वर्षा।

की वन्दना की गई है। मातृभूमि एवं भारत महिलाओं की वंदनाओं में राष्ट्रीय चेतना एवं देश प्रेम का स्वर ऊंचा हो गया है । भारतेन्दु युग की चेतना का पूर्ण प्रभाव इन रचनाओं पर पड़ा है।[1]

स्तुति :

प्रेमघन जी की राधा-कृष्ण से सम्बन्धित स्तुतियों में भक्ति - भावना उच्चकोटि की है। शृंगार विन्दु की अधिकांश रचनायें इसके प्रमाण में रखी जा सकती हैं। उनमें से एक उदाहरण स्वरूप दी जा रही है :-

प्यारे टरहु न मन सन टारे । भूलत नाहिं बिसारे ।।टेक।।
मंद मंद मृदु हसन तिहारी, मूरति मनहुं मयन मनहारी ।
लोचन चपल चितौन कटारी कसकत हीय हमारे ।।
श्री बदरीनारायन दिलवर, जादूडाल दियो तुम हम पर,
मिलत न तरसावत छलबलकर, रूप गरब हठधारे ।।

---शृंगार विन्दु ।

---

१- कृष्ण वन्दना- जय श्री गोकुल नाथ जयति जसुदा के वारे ।
जय वृजचंद अमंद प्रभा परकासन हारे ।।
जयश्री वृन्दाविपिन बीच नित विहरन हारे।
जय त्रिभंग तन श्याम सीस सुभ मुकुट सुधारे ।।
जयकंस निकंदन सुख सदन जय २ श्री गिरिवर धरन ।
बद्रीनारायण जयति जय जय जय मुद मंगलकरन ।।३।।
--- बृजचंद पंचक ।।

राधा वन्दना- सरस सुरन टेरत रटत, राधा राधा नाम।
प्यारी मुख निरखत किए, चक चकोर अभिराम ।।२०१।।

मातृभूमि वंदना- जय जय भारत भूमि भवानी ।
जाकी सुयशपताका जग के दसहूं दिसि फहरानी ।।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ।
जाकी श्री शोभा ल-खि अलका अमरावती खिसानी।।
---- जातीय संगीत ।

भारतीय स्त्री वंदना--

धनि धनि भारत की भामिनियां जिनकी सुजस रह्यो जगछाय ।
कमला गौरी, गिरा, शची, जिहि निरखि रहीं सकुचाय ।।
भई, गार्गी, मैत्रेई मुनि पत्नी मुनिन हराय ।
विदुषी विशद ब्रह्म विद्या की तिय कुल मान बढ़ाय ।--स्त्रियों की कीर्ति

सुमिरिनी :

प्रेमघन जी के युगल-मंगल स्त्रोत्र एवं 'सूर्य स्तोत्र' सुमिरनी के अन्तर्गत आते हैं। दोनों स्तोत्रों में सूर्य स्तोत्र[1] में सूर्य का स्मरणकर रक्षा की प्रार्थना की है। युगल-मंगल स्तोत्र में राधा-कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की गई है।

'सूर्य-स्तोत्र' की जो परम्परा आदि काल से चली आ रही थी उसका क्रमिक विकास आधुनिक काल में भी हुआ और जो 'सूर्य-स्तोत्र' लिखे गए उनमें हिन्दी-भाषा का ही माध्यम अपनाया गया। प्रेमघन जी का 'सूर्य-स्तोत्र' इसी प्रकार का है।

---

१- जगत प्रकाशत जागरित करत हरत भय अंश ।
जय जय दिनकर देव भो, मन मानस के हंस ।।१।।
जय प्रत्यक्ष परब्रह्म प्रभु प्रथम जागती ज्योति ।
जोहि जाहि भय खोय सब, सृष्टि जागीरत होति ।।२।।

* * * *

बन्यो रोग आरत सरन, आयो तुव दिन नाथ ।
अबतो याकी लाज प्रभु अहै आप के हाथ ।।२५।।
तुमहिं दिवाकर देव रोग सोक दुख दल दरन ।
मम चिंता हरिलेव, त्राहि त्राहि असरन सरन ।।२६।।

---- सूर्य-स्तोत्र ।

२- मुरली राजत अधर पर उर विलसन वनमाल ।
आय सोई मो मन बसौ सदा रंगीले लाल ।।
सीस मुकुट कर में लकुट कटि तट पट कै पीत ।
जमुना तीर तमाल तर गोलै गावन गीत ।।

---- युगल मंगल ।

४० जगमोहन सिंह :

भारतेन्दु मंडल के चौथे प्रसिद्ध रचनाकार ठाकुर जगमोहन सिंह हैं। 'प्राचीन संस्कृत -साहित्य के रुचि-संस्कार के साथ भारतभूमि की प्यारी रूप रेखा को मन में बसाने वाले ये पहले हिन्दी लेखक थे।[१] उनके श्यामा-स्वप्न में गद्यात्मक रूप में दंडकारण्ड की वन्दना की गई है जिसके प्रमाण के लिए एक उदाहरण दिया जाता है --

या ही मगह्वै के गए दंडक वन श्री राम।
तासों पावन देस वह विंध्याटवी ललाम।।

मैं कहां तक इस सुंदर देश का वर्णन करूं?-------- जिसकी निर्झ-रिणी-- जिनके तीर वा नीर से घिरे मदकल-कूजित विहंगमों से शोभित हैं, जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जल धारा बहती है और जिनके किनारे के श्याम जंबू के निकुंज फलभार से नमित जनाते हैं -- शब्दायमान होकर झरती हैं।

इस प्रकार भारतेन्दु जी ने जिसे स्तोत्रात्मक गद्यगीतों का सूत्रपात किया था उसका अनुकरण ठाकुर साहब के नाटकों में भी हुआ है। देश-प्रेम की युगीन विचार-धारा का पूर्ण प्रभाव उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

राधाकृष्णदास :

भारतेन्दु युग के कवियों में राधाकृष्णदास का नाम भी उल्लेखनीय है। सामयिक प्रभाव से सम्बन्धित रचनाओं के अतिरिक्त उनमें यत्रतत्र विनय और भक्ति का एक नवीन रूप भी मिलता है।[२] उनकी राधा-कृष्ण विषयक

---

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल-- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४३७

२- डा० लक्ष्मी शंकर वार्ष्णेय-- आधुनिक हिन्दी- साहित्य। पृष्ठ ३४० ।

स्त्रोत्रात्मक रचनाएं उपालम्भात्मक हैं और उनमें देशवासियों की अंग्रेजों से रक्षा के लिए अवतार की अभिलाषा प्रकट की गई है । इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं ---

पूर्न प्रताप प्रलय बरसाकरि छिन में याहि बहावै ।
रहै न नाम हिंद-हिन्दू को जग में भवतल जावे ।।
देखो जग उपहासास्पर्द ह्वै तुम्हारो नाम धरावै ।
कृष्ण कृपानिधि । कृष्णकाय ये तुम्हरी विरद बसावैं ।।
कै मारो कै तारौ इनको कछु निस्तार लाओ ।
त्राहि त्राहि करुनामय केशव । दासहि प्रभु अपनाओ ।।[1]
त्राहि । दयानिधि करुणासागर त्राहि दीन के हितकारी ।
बहुत भई अब द्रवैं नाथ । नवनीत प्रिय गिरिवर धारी ।।
सुनत बचन आरत दुखियन के दयासिंधु रुक सकै नहीं ।
होय दयार्द्र तुरंत दिया है सब अपराध बहाय वहीं ।।[2]

कृष्ण तो करुणासागर है अत: समस्त देशवासी उसकी कृपा की कामना के लिए उसकी शरण में आए हैं और प्रार्थना करते हैं --

प्रभो दीन भारतवासी हम, तुम बिनु नहिं अवलंब कहीं ।
तुम जो दया दीठ नहिं देखो मरैं सभी संदेह नहीं ।।
नामदऱ्याचिंता धरो हुई अब बहुत हरो अब दुख के रासी ।
कृष्ण-वारि सींचो भारत भुवि सुख पावैं भारतवासी[3] ।।

कवि ने स्वतंत्र रूप से राधा की प्रार्थना करके उनके चरणों में आश्रय चाहता है --

---

१- श्री ब्रजरत्न दास-- राधाकृष्ण ग्रन्थावली
पृष्ठ ६१-६२ ।

२-)
 ) वही ---२,३-- पृ० २२
३-)

लाड़िली ऐसी मति मोहिं दीजै ।
चरण छोड़ि नहिं जाउं अनत कहुं सरन आपनी दीजै ।
नित उठ दरस करूं पिय प्यारी, हृदय परवान पसीजै ।
इतनी अरज दास की सुनिये निज जन कृपा करीजै ।[४]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने जिस परम्परा का सूत्रपात किया था उसकी पूरी पूरी छाप उनके युग के कवियों एवं रचनाकारों परपड़ी है । यदि राष्ट्रीयता के प्रभाव से मातृभूमि के वंदन स्वरूप स्त्रोत्र लिखे जाने लगे थे परन्तु भक्तिकाल की भक्ति-भावना का किसी भी प्रकार से ह्रास नहीं होने पाया था । सन्त और वैष्णव भक्तों की शैलियों पर अब भी स्त्रोत्र लिखे जा रहे थे ।

## द्विवेदी युग का स्त्रोत्र-साहित्य :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रादुर्भाव हिन्दी-भाषा के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है । उनकी परिष्कृत रचना प्रणाली का हिन्दी पर जो महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, उसके विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है ------"खड़ी बोली के पद्य-विधान पर भी आपका पूरा पूरा असर पड़ा । पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आई ।"[५] जिस राष्ट्रीय भावना से उत्प्रेरित स्त्रोत्र-साहित्य का उदय भारतेन्दु युग में हुआ था उसका श्रेष्ठतम रूप इस युग में प्राप्त होता है । इस युग में जो स्त्रोत्रात्मक रचनाएं लिखी गईं उनमें भारतमाता, राष्ट्रध्वज, स्वतंत्रता, प्रकृति, खादी, कर्तव्यवीर पर बलिदान होने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध:पतन की उन्नति की कामना ईश्वर के अवतारों का राष्ट्रीय नेता के रूप में वर्णन आदि विषय प्रधान रहे । आचार्य द्विवेदी ने स्त्रोत्र-साहित्य

---

४- श्री ब्रजरत्नदास-- राधाकृष्ण ग्रन्थावली पृ० ६५

५- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५६८ ।

में ये सभी विषय अपनाये और उत्कृष्ट साहित्य की रचना की । आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ने इसीलिए लिखा है ---"इसी कारण वे नई हिन्दी के प्रथम और युग प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं । द्विवेदी जी और उनके साथियों का महत्व नए निर्माण के लिए प्रचुर और अनेक मुख सामग्री भेंट करने में है । साहित्य के क्षेत्र में किसी एक व्यक्ति पर इतना बड़ा उत्तरदायित्व इतिहास की शक्तियों ने कदाचित पहली बार रक्खा था और पहली बार द्विवेदी जी ने इस उत्तरदायित्व के सफल निर्वाह का अनुपम निदर्शन प्रस्तुत किया ।[१]

अब यदि द्विवेदी जी के स्तोत्र-साहित्य पर विहंगम दृष्टि डाली जाय तो उनकी अनेक स्तोत्रात्मक रचनाएं विनय-विनोद, श्री महिम्न स्तोत्र, गंगालहरी, विहार-वाटिका देवी स्तुतिशतक, नागरी और काव्य-मंजूषा में विद्यमान हैं जिनमें हिन्दी स्तोत्रों के वंदना, स्तुति, प्रार्थना आदि रूप उपलब्ध होते हैं ।

वन्दना :

द्विवेदी जी ने अपने स्तोत्रों में सरस्वती,[२] भारतवर्ष, ग्रन्थकार,[३] कवि, मातृभूमि स्वतंत्रता आदि की वंदना की है जिनमें से कुछ उदाहरण प्रमाण-स्वरूप दिये जाते हैं :--

कविता वंदना -

सुरम्यरूपे रसराशि रंजिते विचित्र वर्णाभरणे कहां गई श
अलौकिकानंद विधायिनी महाकवीन्द्रकान्ते कविते अहो कहां
सुरूपता ही कमनीय कान्ति है अमूल्य आत्मारस है मनोहरे
शरीर तेरा सब शब्द मात्र है नितान्त निष्कर्ष यही यही यही।।

---द्विवेदी-काव्यमाला पृ० २९१

१- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी--- आधुनिक साहित्य भूमिका पृ० १३

२- विद्याधार विशाल विश्वन्वाघा-संहारक । प्रेम मूर्ति परमेश अवल अबला हितकारक
----द्विवेदी काव्य माला
पृ० २९१

३- नाभिनवल नीरज दिखलाती, स्तनतट से पट को खिसकाती ।
सुविचार राशि है रत्न कंचिरताधारी,
है सुन्दर वर्ण-सुवर्ण कर्ण सुखकारी । ----- द्विवेदी काव्य माला पृ०३७४

भारत वंदना--

इष्टदेव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे ।
मुक्ति मुक्ति के द्वार हमारे, जै जै जै जै देश ।। १
जै जै सुभग सुवेश ।।

स्तुति :

उनकी स्तुतियों में आराध्य का स्तवन और भक्ति भाव की प्रधानता है । वे मतमतान्तर और धार्मिक वाद-विवाद से सदैव दूर रहे हैं । डॉ० उदय भानु सिंह ने लिखा है -----"द्विवेदी जी संस्कृत की काव्य-सरसता और भाव पूर्ण स्तुति की ओर विशेष आकृष्ट हुए । महिम्न स्त्रोत्र और गंगालहरी इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं । संस्कृत के परमेश्वर शतक, सूर्य शतक, चंडी शतक आदि की पद्धति पर दैहिक तापों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने १८६२ ई० में देवी स्तुति शतक की रचना की ।[2] आधुनिक काल की मंडन से परिपूर्ण वैचारिक क्रान्ति की मर्स्निष परिस्थितियों में वे मतमतान्तर और साम्प्रदायिकवाद विवाद से दूर रहे । उनकी स्त्रोत्रात्मक रचनाएं युग की धार्मिक भावना से पूरे और एकान्त भक्ति-प्रधान हैं जिनमें आराध्य देवता का स्तवन और उसके प्रति आत्म-निवेदन है । इस आत्म-निवेदन के सम्बन्ध में विशेषत: यह उल्लेखनीय है कि वह या तो निजी कल्याण-कामना से अथवा लोक-कल्याण की भावना से अनुप्राणित है । इस विशेषता को निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा लक्ष्य किया

---

१- द्विवेदी काव्य माला पृ० ४५४ ।

मलयानिल मृदु मृदु बहती है, शीतलता अधिकाती है
सुखदायिनि वरदायिनि तेरी, मूर्ति मुझे अति भाती है ।।

बन्देमातरम् ।।पृ० २८३ ।।

२- डा० उदय भानु सिंह -- महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ० ११० ।।

जा सकता है :-

आत्म कल्याण -

किए विलम्ब प्रलय पूरी इत ह्वै है तब पछितौ हौ,
स्वकर बनाये को बिगारिके अंत ताप हिय पै हौ ।
नहिं नहिं असकदापि करिहौ नहिं, दया दृष्टि तुम दैहौ,
प्रणत पाल यहि काल उबारन से हौ, ऐहौ ऐहौ ।।[1]

लोक- कल्याण --

हे भगवान कहां सोए हौ ? विनती इतनी सुन लीजै,
कामिनियों पर करुणा करके कमले ? जरा जगा दीजै ।
कनवजियों में घोर अविद्या जो कुछ दिन से छाई है,
दूर कीजिए उसे दयामय दो सौ दफे दुहाई है ।।[2]

<u>प्रार्थना :</u>

उनकी प्रार्थनाओं में भी लोक कल्याण की वृत्ति विद्यमान है । वे देवी से हिन्दी को राज्य भाषा पद आसीन कराने की प्रार्थना करते हैं---

कछु प्रार्थना है हमारी सुनीजै, जगद्धात्रि आशे कृपाकोर कीजै ।
सबै दनेकी देवि सामर्थ्य तेरी यही धारणा है सविस्वास मेरी
गुणग्रामकी आगरी नागरी है प्रजा की जुसन्मान सो जागरीहै।
मिलै लाहि राजाश्रय चौत्रकारी, यह पूजि यौ एक आशु हमारी ।।[3]।।

उपर्युक्त उद्धरणों से प्रकट है कि युगत सुधारवादी प्रवृत्ति का पूरा -पूरा प्रतिबिम्ब द्विवेदी जी की स्तोत्रात्मक रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है । कहना न होगा कि साहित्य-परम्परा की दृष्टिकोण से इस प्रवृत्ति

---

१- द्विवेदी काव्य माला -- पृ० १८१
२- द्विवेदी काव्य माला -- पृ० ४३७
३- द्विवेदी काव्य माला -- पृ० २२२

का सूत्रपात उनके पूर्ववर्ती भारतेन्दु युग में हो चुका था जिसे हम पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत दिखा आए हैं ।

द्विवेदी युग के अन्य स्तोत्रकार :

अयोध्यासिंह उपाध्याय `हरिऔध` :

द्विवेदी युग के प्रारम्भ से ही `हरिऔध` जी ने अपनी साहित्य साधना प्रारम्भ की थी । उनकी रचनाओं में लोक-संग्रह का भाव अधिक है और राम-कृष्ण, राधा-सीता आदि देवी - देवता उनके काव्यों में आदर्श नेता, समाजसेवी, एवं लोक-रक्षक के रूप में आए हैं । प्रिय प्रवास में कृष्ण अपूर्व सौंदर्याकर्षण के कारण लोकरंजक नहीं, अपितु स्वभावगत: व्यक्तित्व के कारण लोक प्रिय बन गए हैं[1]। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रने इसके समर्थन में लिखा है ---- "प्रिय-प्रवास के श्री कृष्ण महापुरुष के रूप में चित्रित किए गए हैं । बाल्मीकि ने श्री राम को महापुरुष-पूर्ण मनुष्य के रूप में ही दिखलाया है, यही पूर्ण मानवता `प्रिय-प्रवास` के श्री कृष्ण में भी मिलती है ।"[2]

वे जननायक की भांति इस युग की समस्याओं का समाधान करते हैं और समष्टि के लिए व्यष्टि का त्याग करना चाहते हैं । इस प्रकार मानवता के विभिन्न आदर्श पूर्ण सोपानों पर चढ़ते हुए `अवतार` अथवा ईश्वरत्व के गुणों से विभूषित होने का संदेश देते हैं ।

---

१- प्रसून योंही न मिलिन्द वृन्द को विमोहता औ करता प्रलुब्ध है।
बरंच उसका प्यारा सगंध ही, उसे बनाता प्रिय-पात्र है ।।
विचित्र ऐसे गुण हैं वृजेन्दु में स्वभाव उनका ऐसा अपूर्व है ।
निबद्ध सी है जिनमें नितान्त ही वृजानुरागी जनकी सरलता ।
--- प्रिय प्रवास पृ०

२- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-- हिन्दी का सामयिक साहित्य पृ० ५१ ।

कृष्ण के व्यक्तित्व में इस नवीनता के आधान का कारण युगगत बौद्धिकता है।[1] हरिऔध जी ने हिन्दी स्तोत्रों के विविध रूपों में से मंगलाचरण, वंदना, स्तुति एवं प्रार्थना का अपने काव्य में प्रयोग किया है। जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है :-

मंगलाचरण :

हरिऔध जी ने अपनी रचनाओं में गणेश, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण के मंगलाचरण किए हैं और पूर्व परम्परा का पालन किया है:---

गणेश ---

कुंठित कपालन की कालिमा कलित होति,
अवलोके सुललित ललिमा पदन की ;
सुंदर सिंदूर-मंजु-गात सुख वितरत,
दरत दुरित-पुंज दिव्यता रदनकी ।।
हरिऔध सकल अमंगल बिदलिदेति,
मंगल-कलित कांति मंगल-सदन की;
संकट-समूह सिंधु-सिधुता-विलोपिनी है,
बदनीय सिंधुरता सिंधुर- वदन की ।।[2]

तुरत तिरोहित अपार उर-तम होत,
पग-नख-तारक-प्रसूत जोति घर से ।
रुचिर विचार मंजु सालि बहु विलसत,
जन-अनुकूलता विपुल वारि वरसे ।।

---

१- कवि ने युग की बौद्धिक प्रवृत्ति के अनुरूप कृष्ण से सम्बद्ध लगभग सभी अलौकिक लीलाओं का बौद्धिक दृष्टि से आलोकन किया है। --- डॉ० आशा गुप्ता, खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजना पृ० २८१ ।

२- हरिऔध रसकलश --- पृ० १

सरस्वती --

सुकवि-समूह मंजु साधना- विहीन जन लोक-समाराधना को साज
कैसे सजि है ;
विभु की विभूति ते विभूतिमान बनि बनि भाव साथ छूट क्यों
सुभावना को भजि है।।
हरिऔध असरस उरक्यो सरसह्वै है कैसे अरु विरता अवार
रुचि तजि है ।
मेरी मति-बीन तो मधुर धुनि पैहे कहा, ऐरी बीनवारी, जोन
तेरी बीन बजि है ।।३।।

कृष्ण --

वामदेव-विधि-विबुधेश-वृंद-बंदनीय,
विपुल विनोदन बलित वज्रबाल को ।
कोटि-काम-कमनीय, कामद अकामिन हूं ,
काटत कलुख-कुल कलिकाल को ।।
हरिऔध पावत अपार मोद पूजि-पूजि, अति
सुकुमार कंज नयन कृपाल को ।
विमल वदन बहु विघन-हरनहार,
मंगल-सदन मंजु मदन गोपाल को ।।[1]

## वंदना :

प्रिय-प्रवास के अनेक स्थलों पर श्रीकृष्ण की वन्दना की गई है।[2] उन्होंने कृष्ण के अनादि , अनंत और अखंड रूप का वर्णन किया है । वह संसार का अधिष्ठाता है और रक्षक है । निम्नालिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है :--

---

१- हरिऔध---- रस-कलश -- छंद १-४

२- ,, प्रियप्रवास छंद १०७-१०८ सर्ग १६

शास्त्रों में है कथित प्रभु के शीश औ लोचनों की ।
संख्यायें हैं अमित पग औ हस्त भी है अनेकों ।
सो होके भी रहित मुख से नेत्र नासादि-कों से ।
छूता, खाता, श्रवण करता, देखता, सूंघता है ।।१०७।।
ज्ञाताओं ने विशद इसका मर्म यों है बताया ।
सारे प्राणी अखिल जग के मूर्तियां हैं उसी की ।
होती आंखें प्रभृति उनकी भूरि -संख्यावती है ।
सो विश्वात्मा अमित-नयनों आदि-वाला अत: है ।।१०८।।

निष्प्राणों की विफल बनतीं सर्व- गात्रेन्द्रियां हैं ।
है अन्या-शक्ति कृति करता वस्तुत: इन्द्रियों की ।
सो है नासान दृग रसना आदि ईशांश ही है ।
हो के नासादि रहित अत: सूंघता आदि सो है।।१०९।।[1]

राधा के लोकसेविका रूपकी भी वन्दना की गई है ----

सद् वस्त्रा-सदलंकृता गुण युता-सर्वत्र सम्मानिता।
रोगी वृद्ध जनोपकार निरता सच्छास्त्र चिन्तापरा ।
सद्भावातिरता अनन्य -हृदया सत्प्रेम-संपोषिका ।
राधा थीं सुमना प्रसन्न वदना स्त्री जाति रत्नोपमा ।।[2]

**स्तुति :**

हरिऔध जी ने अपनी स्तोत्रात्मक रचनाओं में राम,सीता,राधा, कृष्ण, बलराम एवं कुलदेवी आदि की स्तुति की है ।

कृष्ण की स्तुति कर व्रजांगनायें उन्हें प्रणतपाल और जगरक्षक[3] कहती हैं ---

---

१- प्रियप्रवास --- १६वां सर्ग,छंद १०९
२- प्रिय प्रवास --- चतुर्थ सर्ग, छंद ८

प्रणतपाल कृपानिधि श्रीपते । फलत है प्रभु का पद पद्म ही।
दु:खपयोनिधि मज्जित का वही।जगत में परमोत्तम पोत है ।
----प्रियप्रवास ।।

विषम संकट में ब्रज है पड़ा । पर हमें अवलम्बन है वही ।
निविड़ पामरता तम हो चला । पर प्रभोबल है नख-ज्योति का।।
----प्रियप्रवास द्वि०सर्ग ।

कृष्ण-बलराम की सहायता के लिए यशोदा कुल देवी की भी स्तुति करती हैं --

जननि जो उपजी उरमें दया। जरठता अवलोकस्वदास की ।
बनगई यदि मैं बड़भागिनी । तव कृपाबल पाकर पुत्र को ।।५३।।
किसलिए अब तो यह सेविका। बहु निपीड़िता है नित हो रही ।
किसलिए तव बालक के लिए। उमड़ पड़ती दुख की घटा ।।५४।।[1]

प्रार्थना :

यशोदा, कृष्ण-बलराम की रक्षा के लिए कुल देवता की भी प्रार्थना करती हैं । वे ही उनकी रक्षा कर सकते हैं :--

प्रभु दिवस उसी मैं सात्विकी रीति द्वारा ।
परम शुचि बड़े ही दिव्य आयोजनों से ।
विधि सहित करूंगी मंजु पादाब्ज-पूजा ।
उपकृत अति होके आपकी सत्कृपा से ।।४७।।[2]

इस प्रकार हरिऔध जी की स्तोत्रात्मक रचनाओं में आधुनिक काल की राष्ट्रीयता एवं पौराणिक काल की भक्ति-भावना का सुंदर समन्वय मिलता है । प्रिय प्रवास के सोलहवें सर्ग में कृष्ण के रूप का वर्णन `मानस` एवं श्री मद्भागवत के रूप-वर्णन जैसा है । समाज कल्याण एवं लोक-रक्षा की

---

१- प्रिय प्रवास--- तृतीय सर्ग छंद ५३-५४ ।
२- प्रिय प्रवास -- चतुर्थ सर्ग छंद ४७ ।

की भावना ने उनके राधा-कृष्ण को और भी आदर्शरूप प्रदान किया है।

मैथिली शरण गुप्त :

गुप्त जी द्विवेदी युग के कवियों में ऐसे कवि हैं जो तब से लेकर वर्तमान युग तक अपने महत्वपूर्ण कवित्व के साथ प्रतिष्ठित हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में --"गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति।"[1] उनमें प्राचीन के प्रति पूज्य और नवीन के प्रति असीम उत्साह है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम लक्ष्य कर चुके हैं कि स्तोत्र-साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय भावधारा का जो बीजांकुर भारतेन्दु युग में हो चुका था उसका पल्लवन आचार्य द्विवेदी द्वारा हुआ। किन्तु द्वितीय उत्थान में हिन्दी-कविता के क्षेत्र में नवयुग का यथेष्ट निर्माण वस्तुत: मैथिली शरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे महाकवियों द्वारा ही हुआ। इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। अत: स्वाभाविक रूप से युगगत नवीन धारा का विकास भी स्तोत्र-साहित्य में इसी काल में दृष्टिगोचर होता है जिसमें गुप्त जी का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनकी एतद् विषयक रचनाएं न्यूनाधिक्य मात्रा में प्राय: सभी काव्य ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं किन्तु विशेषकर भारत-भारती, पंचवटी, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जयभारत, आदि रचनाएं प्रस्तुत विवेचन के लिए प्रस्तुत की जा सकती हैं। इनमें गुप्त होने वाली विशेषताएं स्थूल रूप में दो प्रकार की हैं --(१) प्रथम तो उनमें हिन्दी स्तोत्रों के प्राय: सभी रूप मिलते हैं। (२) दूसरे उनमें विषय की विविधता प्राय: अन्य कवियों की रचनाओं से अधिक ही है। विवेचन की सुविधा के विचार से यहां सर्वप्रथम विषय वैविध्य पर विचार करेंगे।

विषय वैविध्य : स्तोत्रों के अन्तर्गत विषय वैविध्य से हमारा तात्पर्य अनेक देवी-देवता भारतीय तथा भारतेतर पूज्य पुरुषों, धार्मिक श्रद्धाकेन्द्रों

---

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल -- हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ५६६

तथा भारत भूमि आदि से सम्बन्धित स्तोत्रपरक रचनाओं से है। हिन्दी स्तोत्र साहित्य के विविध रूपों पर हम पूर्ववर्ती अध्याय में विचार कर चुके हैं। उसे लक्ष्य करते हुए गुप्त जी के स्तोत्रों में पाए जाने वाले विविध रूप निम्नलिखित उद्धरणों द्वारा किए जा सकते हैं।

मंगलाचरण :

इस कोटि में आनेवाली रचनाएं गणेश, शारदा, तथा उनके निजी आराध्य भगवान् राम की स्तुतियां हैं। साकेत के अन्तर्गत ग्रन्थारम्भ में गणेश से सम्बन्धित स्तोत्र के मंगलाचरण की प्रधान विशेषता पूर्वपती पृष्ठों में विवेचित प्राचीय संस्कृत साहित्य के अनुसरण की है। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि साकेत के प्रत्येक सर्ग का आरम्भ मंगलाचरण से हुआ है। इन मंगलाचरणों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यहहै कि प्रत्येक सर्ग के प्रधान रस के अनुरूप ही उन्होने स्तुत्य-पात्र का चयन किया है। उदाहरणस्वरूप नवम् सर्ग[2] में भवभूति का करुणारस में मंगलाचरण हुआ है। प्रथमसर्ग में ही सरस्वती का मंगलाचरण है :--

अयि दयामयि देवि सुखदे शारदे, इधर भी निज वरद हस्त पसारदे।
दासको यह देह तंत्री सारदे, रामे तारों में नई झंकार दे।
बैठ आ मानस-मराल सनाथ हो, भारवाही कण्ठ के भी साथ हो।
चल अयोध्या के लिए सज साजतू, मां मुझे कृतकृत्य करदे आज तू[2]।।

दसवें सर्ग के आरम्भ में कालिदास का स्मरण किया है[3]। किन्तु भारत-भारती का मंगलाचरण युगगत नवीनता को लेकर किया गया है। उसमें राम की वंदना तो है किन्तु वह ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के स्थान पर उसकी वाणी देशवासियों तक गूंजते हुए पहुंचाने की आकांक्षा के लिए हुए है[4]। जिसे प्रकारान्तर से राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित भी कहा जा सकता है।

---

१- साकेत प्रथम सर्ग (गणेश का मंगलाचरण, सरस्वती का मंगलाचरण )
२- साकेत नवम् सर्ग (भवभूति मंगलाचरण )
३- साकेत दशम् सर्ग (कालिदास मंगलाचरण)
४- भारत-भारती प्रथम छंद।

वंदना :

यद्यपि गुप्त जी रामभक्त वैष्णव हैं किन्तु अपनी समन्वयवादी भावना के कारण ही उन्होंने राम, बुद्ध, और भारतमाता की वन्दनाएं की हैं जिनपर यहां संक्षेप में विचार किया जायेगा।

(क) राम की वंदना :-

इष्टदेव होने कारण इनकी रचनाओं में राम की वन्दना सम्भवत: आयी है। मंगलाचरण में राम का स्मरण भी संभवत: इसी कारण उन्होंने अनेक स्थानों पर किया है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रतिष्ठित उनके लोक-मंगल रूप की वंदना करने में भी वो गोस्वामी तुलसीदास की भांति ही उद्यत दिखाई पड़ते हैं :--

लोक-शिक्षा के लिए अवतार था जिसने लिया,
निर्विकार निरीह होकर नर सदृश कौतुक किया,
रामनाम ललाम जिसका सर्व-मंगल धाम है,
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धासमेत प्रणाम है।[१]

(ख) बुद्ध की वंदना :-

यशोधरा बुद्ध के लौटने पर उनकी वन्दनाकर अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करती है :--

पधारो भव-भव के भगवान्।
रखली मेरी लज्जा तुमने आओ, अत्र भवान ।।
नाथ विजय है बड़ी तुम्हारी, दिया तुच्छ को गौरव भारी।
अपनाई मुझसी लघुनारी, होकर महा महान ।। पधारो --[२]

(ग) भारतमाता की वन्दना :-

भारतमाता की वन्दना की प्रमुख विशेषताएं उसके प्राकृतिक सौंदर्य, उसके महाने उपकारों के प्रति कृतज्ञता तथा अतीत के गौरव से सम्बन्धित अनुभूतियों की है। एक उदाहरण इस प्रकार की वन्दना का दिया जाता है :--

---

१- रंग में भंग - प्रथम छंद

२- यशोधरा -

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है ।
नदियां प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडल हैं ।
करते अभिषेक पयोध हैं, बलिहारी इस वेषकी,
हे मातृभूमि । तू सत्य ही सगुण-मूर्ति सर्वेश की ।।

स्तुति :

'जयद्रथ बध' और साकेत के अनेक स्थलों पर गुप्त जी ने कृष्ण, रामादि की स्तुतियां की हैं । एक उदाहरण यहां दिया जाता है :--

भरत द्वारा रामकी स्तुति :--

बस मिले पादुका मुझे, इन्हें ले जाऊं,
बच उनके बल पर अवधि-पार मैं पाऊं ।
हो जाय अवधि-मय अवध अयोध्या अबसे,
मुख खोल नाथ कुछ बोल सकूं मैं सबसे ।।[1]

प्रार्थना :

गुप्त जी की प्रार्थनाओं में सामयिक क्रान्ति, समाज-कल्याण, देशोद्धार, स्वदेश प्रेम आदि विषय लिए गए हैं । इस प्रकार गुप्त जी ने देवी देवता, राम परिवार[2], प्राकृतिक वस्तुएं[3], मातृभूमि धाम[4] एवं गंगा[5] आदि नदियों की प्रार्थनाएं की हैं । कुछ उदाहरण प्रमाणस्वरूप दिए जाते हैं:--

धन्वन्तरि की प्रार्थना :

धन्वन्तरि की प्रार्थना की उल्लेखनीय विशेषता देश-प्रेम की भावना से अनुप्राणित है । कवि देशगत जन जीवन की दुखावस्था से पीड़ित होकर पुकार उठता है --

---

१- साकेत पृ० १६०-१६१
२- साकेत पृ० २३५-२३६
३- साकेत पृ० २१२-२१३
४- साकेत पृ० ११
५- साकेत पृ० १०३

हरि ! हरि हे !
हे मेरे धन्वन्तरि हे !
तेरे हाथों में है अक्षय सुरस सुधा से भरा घड़ा ।
और देश यह मरा पड़ा ।
नाड़ी में कुछ सार नहीं शोणित में संचार नहीं,
कब से यह अचेत है ऐसा कुछ अन्तर का
शोध न दे। मोह मिटा उद्‌बोध न दे ।

एतद्विषयक प्रार्थनाएं साकेत आदि में प्रसंगानुकूल ही आयी हैं ।

<u>सुमिरिनी :</u>

गुप्त जी की स्तोत्रात्मक रचनाओं का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उनकी 'आह्वान' कविता है । उस समय की जिस तात्कालीन राजनीतिक परिस्थिति ने स्तोत्र-परम्परा को प्रभावित किया था उसका पूर्ण विवेचन इस स्तोत्रात्मक कविता में हुआ है । जन-कल्याण, कर्मशीलता, आक्रोश आदि भावनाएं इसके कविता के मुख्य तत्व हैं जिन्हें उसकी निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा भली भांति दृष्टिगत किया जा सकता है :--

तू ही ऊंचा कर सकता है तन भक्तों का भाल हरे ।
पुरुष पुरातन बन जा फिर तू वही बाल गोपाल हरे ।।
गरज उठा है गरल उगलकर फिर वह बर्बर व्याल हरे ।
आ, आ, आ रे , पुकार रहा है सारा ब्रज बेहाल हरे ।
गुणी गारुड़िक तुझे गोपियां, पहनादें बनमाल हरे ।
जो फन उठे पड़े उसपर ही , अरुणचरणतल-ताल हरे ।
बजा वेणु मोहे पशु पक्षी, नचें मयूर-मराल हरे ।
पावन बन न बहे प्लावन में, जला न डाले ज्वाल हरे ।
अघ बक हंसते हैं रोते हैं गाय, ग्वालिने ग्वाल हरे ।
गाली दे देकर विद्वेषी बजारहे हैं गाल हरे ।
अर्घ्य लिए आस्तिक पूजा का सजा रहे हैं थाल हरे ।
माधव तेरे वंशीवट में प्रकटे पुन: प्रवाल हरे ।

बरसे रंग-उमंग-संग, हा उड़े अबीर-गुलाल हरे ।
सूख रही है कल कालिंदी फैल रहे शैवाल हरे ।
जीवन में जड़ता आई है विगत कमल हतनाल हरे ।
भुजगशयन, निज भूरि भुजों पर भव-भू-भार संभाल हरे ।

कहां आज वह माखन-मिसरी, मोहन भोग रसाल हरे ।
दुष्ट दलन कपटी कुटिलों की गले न बस, अबदाल हरे ।
अक्रूर-प्रिय क्रूर कंसकी चले न कोई चाल हरे ।
आजा आजा तू आसुरों के, उरमें शरसा साल हरे ।
याद जन्म-तिथि हमें, किन्तु हम भूले संवत् -साल हरे ।
नटनागर, नव-नव सागर-तट बने सुवास विशाल हरे ।
ऋद्धि-सिद्धि की सदा वृद्धि हो, जन हो जायं निहाल हरे ।
दु:शासन खलखींच रहा है पांचाली बेहाल हरे ।
पीतांबर, झट दौड़, लाजरख, दया दृटि-पट डाल हरे ।
बलाकर्म-पथ पर जीवन-रथ मेट महा भ्रमजाल हरे ।
तेरी अमर समर-गीतापर वारूं लाखों लाल हरे ।
वह उज्ज्वल ज्ञानाग्नि जलादे जगु जुग का जंजाल हरे ।
युग-युग में आने की अपनी अटल प्रतिज्ञा पाल हरे ।
लीलामय, तेरे करगत हैं अविरत तीनों काल हरे ।
साधन बनें अमृत-मंथन का विषधर आप अराल हरे ।[१]

इनका स्तोत्र-साहित्य अपने युग की विविध प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें धार्मिक तत्वों के साथ ही साथ सामयिक तत्वों का मणिकांचन संयोग हुआ है। उनकी तीसरी विशेषता युगगत राष्ट्रीय भावना को स्तोत्रों के माध्यम से यथोचित प्रकृष्टता के साथ रखने की है। इन सभी अध्ययन सूत्रों को हृदयंगम करते हुए हम कह सकते हैं कि कालक्रमानुसार आधुनिक युग में गुप्त जी को हम ऐसे प्रथम प्रतिनिधि कवि के रूप में पाते हैं जिनमें विषय की

---

१- सुधा (मासिक पत्रिका) प्रधान सम्पादक श्री पद्मसिंह शर्मा अगस्त १९२८।

व्यापकता के साथ साथ युग-चेतना की पूर्व परिधि वर्तमान है। 

श्रीधर पाठक :

खड़ी बोली काव्य के कवियों में पाठक जी का स्थान महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग की सभी प्रवृत्तियां पाठक जी की स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में प्राप्त होती हैं। राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होने के कारण पाठक जी ने अधिकांश छंदों में भारतमाता की वंदना की है। राष्ट्र-ध्वज का महत्व भी उनके स्त्रोत्रों में अनुभूत होता है। इस प्रकार उनके काव्य में हिन्दी स्त्रोत्रों के निम्नलिखित रूप हैं :--

वंदना, स्तुति, प्रार्थना।

वंदना:- अपनी रचनाओं मे पाठक जी ने मातृभूमि, प्रकृति, ईश्वर महापुरुष एवं वंद्य लोगों की वन्दना की है जिनके कुछ उदाहरण प्रमाण स्वरूप दिए जाते हैं :---

मातृभूमि -- कवि ने मातृभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य, सुखकारीरूप और गुणों की वन्दना की है :--

प्रनमामि सुभग सुदेश भारत सतत मम मन रंजनम्।
ममदेश मम सुखधाम मम तन-प्रान-धन-जन जीवनम्।
मम तात-मात-सुतादि-प्रिय-निज-वंधु-गृहगुरु मंदिरतम्।
सुर असुर-नर-नागादि-अगनित-जाति-जनपद सुंदरम्।।

----भारत गीत पृ० ४२।

यह वैभव सम्पन्न और बुद्धि का निधान है। अत: कवि के लिए वंदनीय है--

जयदेश हिंद, देशेश हिंद। जय सुखमा-सुख-नि:शेष हिंद
जय धन वैभव-गुण-खान हिंद, विद्या-वल-बुद्धि-विधान हिंद।

---- भारत गीत पृष्ठ ४४

यह भारतवासियों का रक्षक है और एक वीर के समान अस्त्र-शस्त्रधारी भी है--

जय-जय भारत विशाल, झलकत हिम-कीट भाल।
बुधि-बल-दृग-ज्वलित-ज्वाल-तेज पुंज-धारी।

सर-धनु-वर-खरग-धार, आयुध खल-दल-प्रहार ।
दनुज-कुल-विदार मनुज-गन आनंद-कारी ।।
------ भारत गीत ४८ ।

प्रकृति-वंदना :

कवि ने काश्मीर आदि के आश्रय से भारत के प्राकृतिक स्थलों की भी वंदना की है । रहस्यवादी कवियों की भांति वह भी प्रकृति में ब्रह्म का अनुभव करता है । वह त्रिजगवंदिता, त्रिजगसुन्दरी, त्रिजगशासनी और पुरन्दरी है :--

अहे त्रिजग-वंदिते, त्रिजग-सत्व-संभाविते,
त्रिशक्ति-घन-गुंफिते त्रिगुण-तंत्र-अंतर्हिते ।
त्रिवृत्ति-बर-कंदरे त्रिजग-मातृके इंदिरे ।
अवंध्य-विधि-बंधुरे, भुवन-मंडने त्वां भजे ।
अहे त्रिजग-शासिनी त्रिजग-धाम-आवासिनी,
त्रिक-क्रम-विकासिनी त्रितप-वर्ग-विन्यासिनी ।
भव-मुकुटि-लासिनी समायित:समुद्र प्रासिनी ,
मदंतर-विलासिनी मसृणा-हासिनि,त्वां नुमे ।।
--- भारतगीत पृ० १७

ईश्वर-वंदना :-

कवि ने भगवान् क महान गुणों की अपने अनेक छंदों में वंदना की है[1] +

महापुरूष वंदना :

कवि की स्तोत्रात्मक रचनाओं में मनु जी की भी वंदना की है । उन्हें मानव सृष्टि का निर्माता होने के कारण एक महापुरूष माना है ।[2]

कर्मवीरों की वंदना :

लोक कल्याण एवं कर्म में रत रहने वाले व्यक्ति भी संसार के लिए वंदनीय है[3] ।

---

१- भारतगीत पृ० १००
२- भारतगीत पृ० ८४
३- भारतगीत पृ० ३५

शान्ति-प्रार्थना :

इस प्रकार की प्रार्थना कवि की राष्ट्रीयता, लोक-कल्याण एवं देश प्रेम की भावना की सूचक है। हिन्दी-स्त्रोत्र -साहित्य में पाठक जी शान्ति की प्रार्थना करने वाले प्रथम कवि हैं। भारत में शान्ति के लिए कवि ने प्रार्थना की है ----

भू-व्योम-सोम-रवि-रोम-रोम- में छाजा
अणिमादि-मयी, ओ अणु अणु बीच अमाजा
महिमा-महि-मोहिनि-मोह-अपोहिनि आजा
सुखमा-सुख-दोहिनि, विश्व -विमोहिनि, आजा
बस-कारिणि, ओरस-ओक-उक्तिदा,आजा
ओ आजा आजा शान्ति।शक्तिदा आजा ।।

-----भारतगीत पृ० १६२।

पाठकी जी की स्तोत्रात्मक रचनाओं में उनकी राष्ट्रीय भावना का पूर्ण से व्यंजना हुई है। मातृभूमि में ब्रह्मकी सत्ता का अनुभव करना कवि की प्रमुख विशेषता है।

रामचरित उपाध्याय :

उपाध्याय जी की अनेक स्तोत्रात्मक रचनाओं में मातृभूमि, हिन्दी, हिन्दू एवं गोविंद का स्तवन हुआ है जिसमें उनकी राष्ट्रीयता एवं लोक कल्याण की भावना का समन्वय हुआ है। निम्नलिखित कविता इसका उदाहरण है :--

निज भाषा की सेवा करिये, जन्मभूमि के दुख को हरिए।
भारत , मनमें तनिक न डरिए कुछ कर सकते नहीं पुलिन्द।
जय जय हिन्दी जय जय हिन्द।
जय जय हिन्दू, जय गोविन्द ।।
पर-रंग में निज को मत रंगिए, अपने धर्म कर्म में लगिए।
जागें सभी आप भी जगिए, भारत उड़ने लगे परिन्द ।।
जय जय हिन्दी, जय जय हिन्द।
जय जय हिन्दू, जय गोविन्द ।।[1]

---

१- राष्ट्रीय वीणा पृ० ७७

वह हिन्दी, हिन्दू, हिन्द के कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना करता है --

विनय विनीत दीन की सुनिये, कृपा-सहित गोविन्द ।
पहले से प्रसन्न जब्हों ये, हिन्दू - हिन्दी व हिन्द ।।
मनोरथ पूरा मेरा हो, जगत में यश भी तेरा हो ।
निर्बल को दु:ख कभी न देवे, सबल स्वप्न में नाथ ।।
सभी परस्पर प्रेम बढ़ावें, रहें मिलाये हाथ ।।
फूट की छाती फट जावे । वैर की जड़ भी कट जावे ।।[१]

कवि ने भगवान् से मातृभूमि के कल्याण की ही कामना व्यक्त की है जो उस युग की प्रधान प्रवृत्ति है ।

जगन्नाथ दास `रत्नाकर` :

द्विवेदी युग की ब्रजभाषा-परम्परा के कवियों में रत्नाकर जी का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है । उनकी रचनाओं पर हिन्दी-भक्ति-काव्य का पूर्ण प्रभाव पड़ा है । उनकी `हिंडोला`, उद्धव शतक, हरिश्चंद्र तथा गंगावतरण आदि रचनाओं में अनेक स्तोत्रात्मक स्थल हैं । कुछ रचनाओं में युगीन राष्ट्रीयता एवं लोक -कल्याण की भी प्रवृत्ति के दर्शन किए जा सकते हैं । इस प्रकार इनकी रचनाओं में हिन्दी स्तोत्रों के मंगलाचरण, वंदना, एवं प्रार्थना रूपों का प्रयोग हुआ है जिनका विवेचन उनकी रचनाओं के द्वारा किया जा सकता है ।

मंगलाचरण :

अपनी पूर्ववर्ती परम्परानुसार ही कवि ने उद्धव शतक के प्रारम्भ में कृष्ण का मंगलाचरण किया है और आशीर्वादात्मक रूप ग्रन्थ समाप्ति की कामना प्रकट की है ।[२]

वंदना :

कवि ने अपनी रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं एवं नदियों की वन्दना की है । देवी-देवताओं की वन्दना में राधा,[३] कृष्ण,[४] राम,[५]

---

१- राष्ट्रीयवीणा-- पृ० ७१-७२ । २- उद्धवशतक-- मंगलाचरण
३- रत्नाकर भाग १ काशीनागरी प्रचारिणी सं० पृ० १८१
४ व ५- ,, ,, ,, ,, १८२ व १८५।

शिव,[1] हनुमान[2] आदि प्रमुख हैं।

'गंगावतरण' में गंगा की वन्दना करके कवि ने उसके महत्त्वपूर्ण रूप की प्रतिष्ठापना की है ---

जय बनि कनि के काज घनिक गाहक मतिभोली।
खोट पोट लैदेति खरी मुक्तनि की भोली।
जय सूदन हित अति उदार कोमल चित स्वामिनि।
सेवत सद्य: देति सौख्य-सम्पत्ति सुर दामिनि ।।६।।
जय जोगिनि की परम तत्व सुख-निधि भोगिनि की।
रोगिनि की दु:ख-दरनि हरनि, आरति रोगिनि की।
जय-जय जननि अनंत छोह संतति पर छावनि।
मृतकहुं लै निज गोद मोद सुख दै दुलरावनि ।।७।।[3]

इसके अतिरिक्त (१-५०) छंदों में भी गंगा जी के गुणों का ही गान किया गया है।

प्रार्थना :

'विष्णु-लहरी' में कवि ने अनेक छंदों अपनी पाप-मुक्ति हेतु विष्णु से प्रार्थना की है। उसने इन प्रार्थनाओं में उनके भक्त वत्सल, रूप की स्मरण कराके शरण की कामना की है।[4]

रत्नाकर जी की स्तोत्रात्मक रचनाओं में रीति काल एवं आधुनिक काल की भावनाओं का समन्वय हुआ है। अपनी उत्कृष्ट रचनाओं केवल पर उन्होंने मध्य युगीन प्रवृत्तियों को आधुनिकता प्रदान की है।

---

१- रत्नाकर भाग १ काशी नागरी प्रचारिणी सभा पृ० १८६
२- ,, ,, ,, पृ०१६०
३- गंगावतरण छंद १४
४- विष्णु लहरी छंद १-५२।

सत्यनारायण कविरत्न :

द्विवेदी युग के कवियों में कविरत्न जी की भी कुछ रचनाएं स्तोत्रात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत होने के कारण कवि ने मातृभूमि, स्वतंत्रता एवं ईश्वर के प्रति सुंदर स्तोत्रात्मक रचनाएं लिखी हैं। उनके 'भंवर गीत' में उनकी 'कृष्ण भक्ति' सम्बन्धित भावना का दर्शन होता है। इस प्रकार उनकी रचनाओं में हिन्दी स्तोत्रों के वन्दना और प्रार्थना रूप मिलते हैं।

वन्दना :

कवि ने अपनी वंदनाओं में मातृभूमि और ईश्वर[1] को स्थान दिया है। मातृभूमि की वन्दना में कवि ने उसे 'मातृ तुल्य' माना है :--

बन्दों भारत भुवि महतारी ।
शेष अस्थि पंजर बस केवल भय युत चकित विचारी ।।
लोग अकाल दुकाल सताई जीरनदेह दुखारी ।
मुरझाई माधवी लतासी जनु पाले की मारी ।।
गहरे उष्ण उसास भरित जो निव नव नियति निहारी[2] ।।

इसी प्रकार अनेक रचनाओं में ईश्वर के गुणों का भी गान हुआ है।

प्रार्थना :

अनेक रचनाओं में कवि ने ईश्वर और मनुष्यता की प्रार्थना की है। ईश्वर परक प्रार्थनाओं में भी उसे देश-कल्याण की ही कामना है। वह भारत में हिन्दू -मुस्लिम एकता, नव अभ्युदय आदि आदि का भी आकांक्षी है। यह भावना उसकी अनेक रचनाओं में हैं :--

---

१- राष्ट्रीय वीणा- सं० शिवनारायण मिश्र पृ० १५

२- भंवर गीत ।

बस अब नहिं जात सही ।
विपुल वेदना विविध भांति जो तन मन व्यापि रही ।
कब लौं सहें अवधि सहिवे की कछु तो निश्चित कीजे ।
दीनबन्धु यह दीन-दशा लखि लखि क्यों नहिं हृदय पसीजे ।
गरन-दुख टारन तारन में प्रभु तुम वार न लाये ।
फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै करुणानिधि अलसाये ।।[1]

वह भारत की सुख-शान्ति को महत्वपूर्ण मानता है :--

मंगलमय सुनिये इतनी विनय हमारी ।
कीजे निज अनुपम दया भक्त- भयहारी ।
यह जासों जग-विद्रोह अनल बुझि जावै ।
सुख-शान्ति मधुरफल यह मानव कुल पावै ।।[2]

मनुष्यता की प्रार्थना :

लोक-कल्याण एवं वैभव की प्राप्ति में मनुष्यता की अति आवश्यकता है । सच्ची स्वतंत्रता मुनष्यता से ही प्राप्त हो सकती है ।यही कारण है कि कवि मनुष्यता को देवीमानकर प्रार्थना करता है :--

देवि मुनष्यते । अब, वीणा मधुर बजादे ।
सुंदर सुरीला गाना चित शान्ति का सुनादे ।।
अज्ञान की अंधेरी पथ भूल मारा-मारा --
ये जग भटक रहा है, इसको प्रभा दिखादे ।।

सच्ची स्वतंत्रता की समता की भावनाएं
पावन प्रताप पूर्णा इस जगमें जगमगादे ।।[3]

---

१- राष्ट्रीय वीणा- संपादक शिवनारायण मिश्र पृ० ५६
२- वही पृ० ८२
३- वही पृ० १०६-११

इस प्रकार कविरत्न जी की स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में आधुनिकता की पूर्ण पुट विद्यमान है। भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति और भारतेन्दु युग की नवीन भावनाएं, दोनों का ही प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है।

## गयाप्रसाद शुक्ल `सनेही` :

इनकी स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में ईश्वर, मातृभूमि और स्वतंत्रता आदि का स्तवन हुआ है। ईश्वर परक रचनाओं में उनकी आत्म-समर्पण की भावना विद्यमान है और इस प्रकार उनकी स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में मातृभूमि की प्रशस्ति स्वरूप अनेक उदाहरण हैं।

## विरुद :

अपनी अनेक रचनाओं में कविने भारत माता की वन्दना की है:---

बुलबुल अगर हैं हम तो वह है चमन हमारा।
तन तो कहीं वहीं पर रहता है मन हमारा।
प्यारा वतन हमारा, प्यारा वतन हमारा।

x x x

खादिम उसी के हैं हम मखदूम हैं वो अपना।
किस्मत वही है अपनी यक सूम है वो अपना।।
प्यारा वतन हमारा, प्यारा वतन हमारा।।[१]

उनकी भक्त और भगवान कविता वंदना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसमें उनकी आत्म-निवेदनात्मक भावना का श्रेष्ठरूप मिलता है :--

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एकतारा क्षुद्र हूं,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूं।

---

१- राष्ट्रीय वीणा पृष्ठ १०-११

तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूंद समान हूं,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूं।
तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ।
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूं,
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूं।

## वियोगी हरि :

द्विवेदी युग के कवियों में वियोगी हरि अपनी वीर-सतसई[1] के लिए प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने प्राचीन वीरों की प्रशस्ति गाई है। यहां उनकी एक प्रशस्ति का उदाहरण दिया जाता है जिसमें वीर की भुजाओं की विरुदावली गाई गई है :----

वाहुतौ सराहिए प्रताप रन-बांकुरे के,
खड्ग चढ़ाए खल-सीस जिन खेलि-खेलि,
वाहु तौं सराहिए समर्थ सिवराज जू के,
सहज स्वराज फेरि थाप्यौ रिपु ठेलि-ठेलि।
वाहुतौ सराहिए गोविंद वीर-केसरी के,
यवन कृतान्त-कुंड होये जिन मेलि-मेलि,
वाहुतौ सराहिए बुंदेल छत्रसाल जू के,
युगल मोरि मींजि डारे जिन पेलि-पेलि ।।१।।
मसकि मरोरि फोरि-फोरि शत्रु-बज्र-सीस
समर-सुरंग-फाग खेली जिन साजि साज,
आर्य-कुल-नारिन की खंग व्रतधारिन की,
लोक-लोकसाखी थापी राखी जिन धर्म-लाज।

---

१-- ~~सुधा पृ० ८२, अगस्त १९२८~~

सबल-सनाथन पै गाज-से गिरे पे आय,
अबल,-अनाथन के माथ के बने हैं ताज,
सहित उछाहु भेंटि-भेंटि वीर बाहु ऐसे,
हृदय चढ़ाय प्रेम-आरती उतारी आज ।।[1]

रामनरेश त्रिपाठी :

त्रिपाठी जी द्विवेदी-युग और ~~और~~ छायावाद युग के कवियों के बीच की एक कड़ी माने जा सकते हैं । उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में भक्त-कवियों की आध्यात्मिकता और अपने युग की स्वदेश-भक्ति का पूर्ण समन्वय हुआ है । उनकी स्वदेश भक्ति की भावना के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है -----"स्वदेश भक्ति की जो भावना भारतेन्दु के समय से चली आ रही थी उसे सुंदर कल्पना द्वारा रमणीय और आकर्षक रूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदान किया"[1]। उनकी इस भावना की स्तोत्रात्मक रचनाएं स्वप्न, पथिक, मिलन, आदि में प्राप्त होती हैं । अपनी कुछ प्रार्थनाओं में कवि ने लोक-कल्याण एवं अतीत के वैभव के प्रति मोह का प्रदर्शन किया है :--

करुणामय ! कर कृपा खोलदो मेरे विमल विवेक विलोचन।
मेरे जीवन में ऋषियों का तप भरदो भव-भीति-विमोचन ।।
आर्यों के आदर्श मार्ग पर मेरा हो प्रयत्न अवलम्बित ।
मेरे बहिर्जगत में मेरा-अन्तर्जीवन हो प्रतिबिम्बित ।।
मुझको फिर भविष्य में हे हरि, बनारहे विश्वास अचंचल ।
तेरे अन्वेषण में हे प्रभु ! बीते मेरा एक एक पल ।।
हाय कहां है वह दिन जब मैं प्रियतम की तलाश में चलकर ।
आऊंगा घर न लौटकर, फिर सुगन्धि की भांति निकलकर ।।
---त्रिपाठी ।

---

१ - सुधा पृ० ८२ अगस्त १९२८
१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल-- हिन्दी-साहित्य का इतिहास
पृष्ठ - ५७६।

उनकी कुछ स्त्रोत्रात्मक रचनाओं में जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । उन्होंने दीनों और श्रमिकों में भगवान् को देखकर वन्दना की है:--

तू ढूंढता मुझे था जब कुंज और बन में,
मैं ढूंढता तुझे था तब दीन के वतन में ।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था । मैं---
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ।
बनकर किसी के आंसू मेरे लिए रहा तू ,
मैं देखता तुझे था माशूक के वदन में ।।[1]

त्रिपाठी जी की इन रचनाओं में भक्ति-कालीन प्रवृत्तियों का आधुनिकतम रूप प्राप्त होता है ।

## गोपाल शरण सिंह :

द्विवेदी युग की परम्परा में आनेवाले कवियों में ठाकुर साहब की रचनाएं भी उल्लेखनीय हैं । उनकी प्रमुख रचनाओं में `जगदालोक` एवं `ज्योतिष्मती` प्रसिद्ध हैं । काव्यात्मक सौंदर्य के साथ-साथ इनमें आत्मानंद से समन्वित तात्त्विकता का पुट मिलता है । `जगदालोक` के अनेक स्थलों पर आत्म-निवेदनात्मक स्थल हैं जिनमें वह स्वरक्षा की कामना करता है ---

महा प्रबल हे अरिदल ।।[2]
दानवता से प्यार न हो ।।[3]
रहा सदा प्राणों में प्रभुवर ।।[4]
मिले तुम्हारा दर्शन ।।[5]

---

१- अन्वेषण कविता
२- जगदालोक-- पृष्ठ २६१
३- जगदालोक -- पृ० २०६
४- जगदालोक -- पृ० २०६
५- जगदालोक -- पृ० २०६

अन्धकार का नाश करो ।[1]

आदि रचनाएं इसी प्रकार की हैं । अनेक स्थल मातृभूमि की वन्दना से संबंधित हैं । उनमें से एक उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है :--

है अनुपम यह भारतवर्ष ।
वन्दनीय पुरुषोत्तमराम, लीलाधाम रुचिर घन श्याम।
जहां हुए अवतीर्ण ललाम । बुद्धदेव नव देकर ज्ञान ।।
जिसको किया प्रबुद्ध सहर्ष ।।
जहां हुए नृपवर्ण अशोक, जिनसे पाकर दिव्य लोक ।
था कृतकृत्य हुआ यह लोक, सभ्य हुए कितने ही देश ।।
जिससे करके प्राप्त विमर्ष ।[2]

'ज्योतिष्मती' के पूर्वार्द्ध में 'तुम' और उत्तरार्द्ध में 'मैं' कविताओं में छायावादी भावनाओं को नए रूप में चित्रित किया गया है । वह भावना रहस्यवाद के स्थान पर भोले भाले भक्तों सी है ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में मातृभूमि , स्वतंत्रता, हिन्दी जयध्वज, कर्मवीर आदि स्तोत्रों के आधार बने और कवियों ने इनके स्तवन में प्रभु की सहजानुभूति करके अपनी आत्मिक पिपासा को शान्त करने का प्रयत्न किया है। गांधीवाद का भी प्रभाव इस युग पे गहरा पड़ा था जिसने स्तोत्रों की प्रवृत्तियों को वह रूप दिया जिसका विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है ।

## छायावाद युग :

आधुनिक काल का तृतीयोत्थान 'छायावाद युग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । काव्य में जो सर्वतोमुखी क्रान्ति भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई उसका पूर्ण कलात्मक रूप इस युग में दिखाई पड़ा । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के

---

१- जगदालोक पृ० २०६
२- जगदालोक पृ० २७२

शब्दों में -----"इस तृतीय उत्थान में जो परिवर्तन हुआ और जो पीछे छायावाद कहलाया, वह इसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है।"[1] महादेवी जी ने छायावाद के दर्शन को सर्वात्मवाद की संज्ञा दी है परन्तु आरम्भ से ही इसमें जीवन में सूक्ष्म आंतरिक मूल्य को ही महत्व दिया गया है। दार्शनिकता के रंग में रंगकर यह प्रवृत्तियां रहस्यवाद के रूप में सामने आईं जिन्हें एक प्रकार की जिज्ञासा कहा जा सकता है। प्रकृति अवनिश्चेतनसत्ता न रहकर मानव की चेतन बन गई जिसका रागात्मक बोध छायावादी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दी-काव्य साहित्य में इस भावना का प्रवर्त्तन करने वाले जयशंकर प्रसाद थे। उनकी रचनाओं में स्तोत्रपरक ने भी युगानुरूप नवीन कलात्मक रूप पाया।

## प्रसाद :

इनके प्रादुर्भाव से आधुनिक कविता में एक नवीन परिवर्तन हुआ और ब्रह्म के प्रति जिज्ञासात्मक भावना जागृत हुई। प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएं ब्रजभाषा से प्रारम्भ की थी जिसमें पूर्ववर्ती अन्य काव्य-शैलियों के साथ साथ भक्त कवियों की भांति इन्होंने पद-रचना की शैली को भी अपनाया। इस शैली में लिखी हुई प्रसाद जी की स्तोत्रात्मक रचनाएं अपनी मार्मिकता और अनुभूति की गम्भीरता में सूर, तुलसी की रचनाओं की समताकर सकती है:---

आज तो नीके नेह निहारो।
पावस के घन तिमिर भार में बीती बात विसारो।।
कि गया जो चपला सम यह प्रियतम विरह तिहारो।
ताकि बहाओ रस बरसा में, हे घन आनंद वारो।।
चातक लौं नित रटत रहत हम, हे सुन्दर पी प्यारो।
हरित करो यह मरुसम मो मन, देहु प्रसाद पियारो।[2]

---

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ५६५
२- जयशंकर प्रसाद -- चित्राधार पृ० १८८

प्रसाद जी ने कुछ प्रार्थनाएं भ्रंवरगीत प्रसंग से प्रभावित होकर लिखी हैं जिनमें निर्गुण -सगुण का वैषम्य, वाक्विदग्धता और उपालम्भ की वक्रता है। इस प्रकार के स्थलों पर कवि प्रतीयमान रूप से पात्र की तथा वास्तव में उससे तदाकृत अपनी अनुभूति की व्यंजना करता है[1]---

ऐसे ब्रह्म लेइ का करिहै ?
जो नहिं करत, सुनत नहिं जो कछु, जो जन पीर न हरिहैं।।
होय जो ऐसो ध्यान तुम्हारो ताहि दिखाओ मुनि को।
हमरी मति तो, इन झगड़न को समुझि सकत नहिं तनिको।।
परमस्वारथी तिनको अपने आनंद रूप दिखाओ।
उनको दु:ख अपनो आश्वासन मनते सुनो सुनाओ।।
करत सुनत फलदेत लत सब तुमही यही प्रतीत।
बढ़ै हमारे हृदय सदा ही देहु चरण में प्रीत।[2]

आध्यात्मिक सौंदर्य बोध छायावादी कविता का केन्द्रीय उपकरण है। अपनी उदात्त सीमा पर पहुंचकर वह निखिल विश्व को ब्रह्ममय अनुभव करता है ------------- "छायावाद सांसारिक वस्तु सत्ता के भीतर एक दिव्य सौंदर्य का प्रत्यय है। उसमें अद्वैत तत्व का भास मिल जाता है। काव्य की दृष्टि से छायावाद प्रकृति, मानव- जीवन, प्रेम और सौंदर्य को अधिक निगूढ़ रूप से प्रकट करता है[3] ब्रज भाषा काव्य-रचना के प्रथम चरण के पश्चात् प्रसाद जी की कृतियों में जो स्तोत्रात्मक अंश मिलते हैं उनमें प्रसाद जी ने उपर्युक्त अद्वैत तत्व का ही अनेक रूपों में निरूपण किया है। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी जी ने लिखा है -----"प्रसाद जी भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अध्येता और अनुयायी हैं। वे सुख और दु:ख को तात्त्विक वस्तु मानते के विरोधी हैं। सुख और दुख की भावनाओं के ऊपर प्रतिष्ठा पाने वाले आनंदतत्व

---

१- डा० निर्मला जैन-- आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएं पृ-४०८
२- प्रसाद -- चित्राधार पृ० १७६-१८८
३- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी- आधुनिक काव्य रचना और विचार पृष्ठ ४०-४१।

का प्रसाद जी ने आदर्श निरूपण किया है।[1] इस तत्व का संस्तवन प्रसाद जी ने अनेक प्रतीकों के माध्यम से किया है। इसलिए उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में राम-कृष्ण अथवा प्राचीन देवी-देवताओं के नामों के प्रयोग प्राय: नहीं ही मिलते हैं। कभी वे इस परम सत्-चित-आनंदमयी परमसत्ता का आह्वान अंधकार पर विजय पाने वाले प्रकाश के रूप में इस प्रकार करते हैं ?--

अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे हिमवन आंसू जो क्षोभ भरे,
ऊषा बटोरती अरुण गात। अब ------ ।।
तम-नयनों की तारामें सब- मुंद रही किरणदल में है अब,
चल रहा सुखद यह मलय बात। अब ----------।।
रजनी की लाज समेटो तो, कलख से उठकर भेंटो तो,
अरुणांचल में चल रही बात। अब जागो जीवन के प्रभात ।।[2]

इसी प्रकार उन्होंने सुख-दुख के द्वन्द्व की ज्वालाओं में जलते हुए जगत को वृन्दावन बनाने वाले आनन्द तत्व-भक्ति पूर्ण आह्वान किया है ---

जग की सजल कालिमा रजनी में मुखचंद्र दिखाजाओ।
हृदय अंधेरी -झोली इसमें ज्योति भीख देने आओ।।
प्राणोंकी व्याकुल पुकार पर एक मीड ठहरा जाओ।
प्रेम-वेणु की स्वर-लहरी में जीवन-गीत सुना जाओ।।

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छट जाने दो।[3]
जीवन-धन इस जले जगत को वृन्दावन बन जानेदो ।।

इस परात्पर परम अद्वैत सत्ता के साक्षात्कार की आकुल अभीप्सा प्रसाद जी ने इस प्रकार के गीतों में व्यक्त की है :---

---

१- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी -- आधुनिक साहित्य पृ०
२- लहर -- पृष्ठ २४
३- लहर -- पृष्ठ २६

मेरी आंखों की पुतली में तू बनकर प्रान समाजारे ।
जिससे कन कन में स्पन्दन हो, मनमें मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो- वह जीवन-गीत सुनाजारे।
खिच जाय अधर पर वह रेखा-जिसमें अंकित हो मधु लेखा,
जिसको यह विश्व करे देखा, वह स्मित का चित्र बनाजारे।।[1]

प्रसाद जी की कुछ ऐसी रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें उन्होंने प्रतीकों की वक्र एवं लाक्षणिक पद्धति छोड़कर सृष्टि के अणु परमाणु में रमने वाले राम की सीधी अभ्यर्थना की और उनके प्रति अपनी भक्ति -भावना अर्पित की है:--

जीवन जगत के विकास विश्व वेद के हो,
परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्ण काम हो ।
विधि के विरोध हो निषेध की व्यवस्था तुम,
खेद भयरहित, अभेद, अभिराम हो ।
कारण तुम्हीं थे, अब कर्म हो रहे हो तुम्हीं,
धर्म कृषि मर्म के नवीन घनश्याम हो ।
रमणीय आप महामोमय धाम तो भी,
रोम रोम रम रहे, कैसे तुम राम हो ।।[2]

ऊपर के उदाहरणों में यह देखा जा सकता है कि प्रसाद जी की स्तोत्रात्मक रचनाएं पूर्ववर्ती युग के स्तोत्रकारों जैसी वाह्य आकार-प्रकार और व्यवहार की स्थूल वर्ण मानी गई है । उसमें उस परमसत्ता के सर्वातिशायी अंत: सौंदर्य की झांकी मिलती है । उनकी बहुत सी आध्यात्मिक रचनाएं जिज्ञासा प्रधान हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा है --- 'जिज्ञासाओं की व्यंजना यह है कि वे प्रत्येक रमणीय वस्तुएं चैतन्य ज्योति देखते हैं ।' इस चैतन्य ज्योति के विषय में वे एक के बाद एक गम्भीर प्रश्न उठाते हैं और बिना इनका उत्तर दिए हुए उन प्रश्नों के ही माध्यम से परम सत्ता के सच्चिदानंदमय शिवस्वरूप का निरूपण करते हैं । ऐसे प्रसंगों में स्तोत्र रचना की कला की

---

१- लहर ---- पृ० २८
२- झरना पृ० ६१
~~३- कामायनी पृ० २८~~

बड़ी ही उदात्त कला में दर्शन होते हैं । कामायनी से इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं :---

महानील इस परम व्योम में, अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण किसका करते से संधान ।
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए ।
तृण वीरुध लहलहे हो रहे किसके रससे सिंचे हुए ।।
सिर नीचाकर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहां,
सदा मौन हो प्रवचनकरते जिसका वह अस्तित्व कहां।।[1]

उस परमसत्ता के विराट शिवरूप का बड़ा मनोज्ञ चित्रण भी प्रसाद जी ने किया है । यह चित्रण संस्कृत के अच्छे से अच्छे स्तोत्रों के समकक्ष रखा जा सकता है :--

नील गरल से भरा हुआ यह चंद्र कपाल लिये हो,
इन्हीं निमीलित तारात्रों में कितनी शान्ति पिये हो ।
अखिल विश्व का विष पीते हो सृष्टि जियेगी फिर से,
कहो अमर शीतलता इतनी आती तुम्हें किधर से?
अंचल अनंत नील लहरों पर बैठे आसन मारे ,
देव । कौन तुम झरते तनसे श्रम कणसे ये तारे ।।[2]

शिव ताण्डव और महिम्न स्तोत्र आदि में भगवान शंकर के तांडव नृत्य की जैसी मुद्रायें प्रस्तुत की गई हैं । तांडव नृत्य की उसी प्रकार की कुछ मुद्रायें प्रसाद जी ने कामायनी में अंकित की हैं :----

बन गया तमस था अलक जाल, सर्वांग ज्योतिमय था विशाल,
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित् ,
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत, था अंतरिक्ष प्रहसित मुखरित,
स्वर लय होकर दे रहे ताल, थे लुप्त हो दिशाकाल ।।

---

१- कामायनी पृ० २८

२- कर्म सर्ग --- पृ० १२३ -- कामायनी ।

लीला का स्पन्दित आल्हाद, वह प्रभा पुंज चित मय प्रसाद,
आनंद पूर्ण ताण्डव सुंदर झरते थे उज्जवल श्रम सीकर,
बनते तारा हिमकर दिनकर उड़ रहे धूलि कण से भूधर,
संहार सृजन से युगल पाद गतिशील, अनाहत हुआ नाद।[1]

उपर्युक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त प्रसाद जी की रचनाओं में नवधा भक्ति के भी तत्व विद्यमान हैं जिनके कतिपय उदाहरण प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं :--

कीर्तन : जय जयति करुणा सिंधु
(१) जय दीन जन के बंधु -- राज्यश्री पृष्ठ ६३
(२) अलख रूप
तेरा नाम सब सुख धाम
जीवन ज्योति स्वरूप --- राज्यश्री पृ० ६८
(३) दाता सुमति दीजिये ---- अजातशत्रु पृ० ५६

स्मरण : (१) आओ, हिये में अहो प्राण प्यारे ---- अजातशत्रु पृ० ४५
(२) बजादो वेणु मन मोहन। बजादो।
हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।
---- स्कंद गुप्त -- पृ० १७२

पाद-सेवन: हे पावन पतितन के सरवस दीन जनन के मीन
सब बिसारि दुर्गुन निज जन को, देहु चरण में प्रीत ।।
---चित्राधार- मकरंद विंदु पृ० १८५

अर्चन : देखि ये यह विश्व व्याप्त महा मनोहर मूर्ति।
चितरंजन करति आनंद भरति है धरि स्फूर्ति ।।
देव बालागत सबै पूजनकरत सुख पाई।
तारका गन कुसुम माला देत हैं पहिराई ।।
---चित्राधार, शारदीय महापूजन पृ० १८५

---

१- दर्शन -- पृ० २५३ -- कामायनी।

वन्दन : जयति प्रेम-निधि जिसकी करुणा नौका पार लगती है ।

---कानन कुसुम पृ० ३

बना लो हृदय बीच निजधाम
करो हमको प्रभु पूरन -काम

----- कानन कुसुम पृ० ५८

दास्य भाव: हौं पातकी तदपि हौं प्रभु दास तेरो ।
हौं दास नाथ तब है दिय आस तेरो ।।
है आस चित यहै होय निवास तेरो ।
होवै निवास महदेव । प्रकाश तेरो ।।

--चित्राधार, वि भो पृ० १५७

ऊपर बताया जा चुका है कि प्रसाद जी की रचनाओं में अधिकांश रचनाएं व्यक्त स्थूल और रेखावद्ध नहीं हैं उनमें ऐसा कल्पना वैशिष्ट्य है जिससे वे उत्कृष्ट सौंदर्य के अन्त: तत्व से मंडित हो गई हैं । यह विशेषता उनकी राष्ट्रवंदना विषयक रचनाओं में भी मिलती है :---

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।
सरसताप रस गर्भ विभापर नाच रही तरु शिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा ।
लघु सुर धनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे ।
उड़ते खग जिस ओर मुंह किए - समझ नीड़ निज प्यारा ।
बरसाती आंखों के बादल -बनते जहां भरे करुणाजल ।
लहरें टकराती अनंत की --- पाकर जहां किनारा ।।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे- भरती ढुलकाती सुख मेरे ।
मंदिर ऊंघते रहते जब जगकर रजनीचर तारा ।।[१]

---

१- चन्द्र गुप्त नाटक

यह राष्ट्र की उदात्त ज्योतिर्मयी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं प्राकृतिक सौंदर्य की आभ्यान्तरिक अनुभूति करने वाली रचना है । इस में प्रतीकों की प्रधानता है और देश के व्यक्तित्व का आन्तरिक रूप चित्रित किया गया है । राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा का महत्वपूर्ण रूप इस कविता में प्राप्त होता है । जिस प्रकार कालिदास ने मेघदूत में प्राप्त होता है। सौंदर्य वर्णन के माध्यम से राष्ट्र का स्वरूप अंकित किया गया है । उसी प्रकार इस गीत में प्रसाद जी ने प्राकृतिक सौंदर्य के प्रतीकात्मक वर्णन द्वारा स्वदेश की सूक्ष्म श्री एवं सुषमा का चित्रण किया है ।

उनकी कुछ रचनाओं में गंभीर सांस्कृतिक चिंतन और पुनरुत्थान का भाव व्यक्त हुआ है । ऐसी रचनाओं में अतीत के महत्व का आधार लेकर जन-जागरण के लिए एक नव प्रेरणा दी गई है:---

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार ।
ऊषा ने हंस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार ।
जगे हम लगे जगाने विश्व देश में फैला नव आलोक ।
व्योम तम पुंज तब नष्ट अखिल संसृति हो उठी अशोक ।
मधुर वाणी ने वीणा ली कमल कोमल कर में सप्रीति ।
सप्त स्वर सप्त सिंधु से उठे छिड़ा फिर मधुर साम संगीत ।

प्रसाद जी एक युग प्रवर्तक कलाकार थे जिनकी संकल्पात्मक रससिद्धि की धारा भारतीय जन-जीवन को एक नव संदेश देती है । उनकी आन्तरिक भावनाएं व्यक्तिगत न होकर समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं । गुप्त जी की भांति ही वे भी राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं । राष्ट्रवंदन में लिखी गई स्तोत्रात्मक रचनाएं इसका प्रमाण हैं । साथ ही साथ इन रचनाओं में भौगोलिक स्वरूप निरूपण की अपेक्षा सांस्कृतिक पक्ष अधिक व्यक्त हुआ है । प्रसाद जी ने प्राचीन परम्परा की रूढ़ि शब्दावली और प्रतीक पद्धति का सर्वथा परित्याग कर स्तोत्रों की रचना की है ।

---

१- स्कन्द गुप्त नाटक

## सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' :

छायावादी युग के कवियों में स्तोत्रकार के रूप में 'निराला' जी का एक सर्वोपरि स्थान है । उनके गीतों में सजीवता और वास्तविकता है जो उनके दार्शनिक चिंतन का प्रमाण उपस्थित करती है । उनकी कतिपय कविताएं (तुम और मैं, तुलसीदास के कुछ अंश और परिमल में आईं उनकी अन्य दार्शनिक रचनायें) गूढ़तम सत्यों के साक्षात्कार से प्रत्यक्ष सम्बन्धित हैं ।[१] उनकी राष्ट्र वन्दना स्वरूप लिखी हुई कविताओं में एक विराट भावरूप की समष्टि का प्रतिष्ठापन हुआ है । उसके पीछे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चेतना का बल है । वह उद्बोधनात्मक है अवश्य, साथ ही सूक्ष्म भाव संवेदना और विराग भावना के कारण उसका स्थायित्व है ।[२] उनके गीतों में परोक्ष सत्ता की रहस्यात्मक अनुभूति है जिसका युक्तियुक्त विवेचन करते हुए आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने लिखा है -----"परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से उनके गीत सज्जित हैं । रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की जो बहु विधि चेष्टाएं आधुनिक हिन्दी में की गई हैं उनमें निराला जी की कृतियां विशेष उल्लेखनीय हैं ।[३] उनके काव्य की बौद्धिक उदात्तता और दार्शनिक परिवेश उन्हें अपने युग के कवियों में मूर्द्धन्य स्थान दिलाता है ।

वे छायावादी कवि हैं परन्तु मुक्त छंदों में उन्होंने परोक्ष शक्ति को विराट सत्ता और शाश्वत ज्योति के रूप में व्यक्त किया है । प्रसाद जी की भांति ही उन्होंने उसे श्यामा और माता आदि प्रतीकों के रूप में भी अभिव्यक्त किया है । यमुना में श्याम और अतीत आदि प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । वे इस जड़ जीवन और जगत में उसी शाश्वत ज्योति के प्रकाश का अनुभव करते हैं । वे एक ज्योति के अनेक रूपों को प्रकृति में अनुभव कर एक ही अदृश्य अनंत में उसका पर्यवसान देखते हैं । छोटी बड़ी वासनाएं उसी अनन्त ज्योति के चरणों में जाने से दूर हो सकती हैं । आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ने उनके इस दर्शन के विषय में लिखा है ---"प्रसाद जी मानवीय माध्यम द्वारा रहस्यात्मक अनुभूतियां प्राप्त

---

१ - John Benett - Metaphysical Poets

२- प्रो० धनंजय वर्मा -- निराला काव्य और व्यक्तित्व पृ० २४१

३- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी- हिन्दी-साहित्य, बीसवीं शताब्दी पृ० १४७

करते और व्यक्त करते हैं । मानवीय भावनाओं से (अर्थात् मानवीय वृत्तियों से) इतना आकर्षित हैं कि मनुष्य ही उनके चैतन्य की इकाई बन गया है पर निराला जी की इकाई वही 'शाश्वत ज्योति' है जो उनकी कविता और उनके दार्शनिक सामाजिक कलात्मक विचारों के मूल में है ।[1] इसी शाश्वत ज्योति का उन्होंने राम, कृष्ण, शिव, बुद्ध, सरस्वती आदि के रूप में भी स्तवन किया है जिसे उनके द्वारा प्रयुक्त हिन्दी-स्तोत्रों के प्राय: सभी रूपों से सम्बन्धित निम्नलिखित विवरण में लक्ष्य किया जा सकता है :--

वन्दनाएं :

निराला जी की वन्दनाएं दो प्रकार की हैं - प्रथम प्रकार की वंदनायें वे हैं जो ईश्वर की वंदना से सम्बन्धित हैं । दूसरी प्रकार की वन्दनाओं में राष्ट्रीय तत्वों की प्रधानता है । जिनका विवेचन क्रम से किया जायेगा ।

ईश्वर परक वन्दनाएं :

निरालाजी की वन्दनाओं में उसी शाश्वत ज्योति की अव्यक्त सत्ता की अनुभूति के साथ ही उसकी निराकारता और निरामयता का निरूपण हुआ है । वह अजर-अमर है :---

तुमसे लाग लगी जो मनकी जगकी हुई वासना बासी ।
गंगा की निर्मल धारा की मिली मुक्ति तामस की काशी ।
हारे सकल कर्म नल खोकर लौटी माया स्वर से रोकर
खोले नयन आंसुओं धोकर चेतन परम दिखे अविनाशी ।
नि:स्पृह, नि:स्व, निरामय निर्मम, निराकांक्ष, निर्लेप, निरूद्ध गम ।
निर्भय निराकार, नि:सम, श्रम, माया आदि पदों की दासी ।[2]

उनके भक्ति गीतों में प्रायः उसी अद्वैत तत्व की वन्दना की गई जिसे निराला जी शाश्वत ज्योति मानते हैं । 'तुम और मैं' कविता में उसे योग

---

१- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी --- आधुनिक काव्य रचना और विचार पृष्ठ १४३

२- आराधना पृ० ५०

और 'सिद्धि,' 'शुद्ध सच्चिदानंद,' राधा के कृष्ण, शिव और शक्ति, राम और सीता आदि का रूप दिया गया है। इस कविता में ब्रह्म और जीव का पारस्परिक सम्बन्ध अनेकानेक प्रतीकों के द्वारा व्यक्त किया गया है :--

तुम नंदन-वन-घन-विटप और मैं सुख-शीतल- तल शाखा,
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म मैं मनोमोहिनी माया।
तुम-शुद्ध-स तुम प्रेम मयी के कंठहार मैं वेणी काल-नागिनी
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार

^ ^ ^

तुम शिव हो मैं हूं शक्ति, तुम रघुकुल-गौरव रामचंद्र,
मैं सीता अबला भक्ति।

---- अपरा गीत पृ० ६८-६६

इसी प्रकार की भावना तुलसीकी 'विनय- पत्रिका' के पद में भी हैं:--

तुम दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी ।।१।।
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसों
मोसमान आरत नहिं, आरति हर तोसों ।।२।।

---- विनय-पत्रिका पद ७६

उसी दिव्य ज्योति का प्रकाश समस्त विश्व में प्रतिभासित होता है अदृश्य होते हुए भी उसका प्रकाश जीवन केन्द्र विन्दु है :--

ज्योति प्रात, ज्योति रात, ज्यौति नयन, ज्योति गात।
ज्योति चरण, ज्योति नाल, ज्यौति विटप आलबाल,
ज्योति सलिल, ज्योति लाल, ज्योति कलश, ज्योति पात।
ज्योति प्रथम, प्रिय दर्शन, ज्योति रूप आकर्षण,
ज्योति मिलन, शम वर्षण, ज्योति नियम, ज्योति जात ।।

---- आराधना पृ० ५४

वही निराकार, ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम आदि रूपों में विद्यमान है और वही शक्ति शिवरूप में विश्व का कल्याण करने के लिए विष रूप में सांसारिक पीड़ा का पान करती है :--

जय अजेय, अप्रमेय जय जग के परमपार ।
जय जीवों के जयके, तपके, तनु सूत्रधार ।
गरल कण्ठ हे अकुण्ठ बैठक बैकुण्ठ धाम,
जय शिव, जय विष्णु , शंकर जय कृष्ण राम
शतविध नमानुबंध बान्धवहे निराकार --
जय अजेय, अप्रमेय, जय जग के परमपार ।

----आराधना ६७

स्त्रोत्रकार उसी ज्योति में शिव की ताण्डव मुद्रा का रूप अनुभव कर जनजागरण और नवशक्ति का आहृवान करता है :--

नाचो हे रूद्रताल, आंचो जग ऋजु-अराल ।
झरे जीव जीर्ण-शीर्ण, उद्भव हो नव प्रकीर्ण,
करने को पुन: क्षीण? हो गहरे अन्तराल ।
फिर नूतन तनलहरे मुकुल-गन्ध बन छहरे ,
हर तरु- तरु का हहरे, नवमन सायं-सकाल ।

--आराधना पृ० ५५

कुछ वन्दनाएं सगुण रूप में की गई है जिनमें सरस्वती की वन्दना इसी कोटि की है । इसमें कवि सत्यं, शिवं सुंदरम् की कल्पना करके लोक मंगल की कामना करता है । वीणा का स्वर विश्व के कण कण में व्याप्त हो जाय :--

वीणा वादिनि वर दे ।
प्रिय स्वतंत्र- रव अमृत- मंत्रनव
भारत में भरदे ।

काट अंध-उरके बंधन -स्तर, बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष-भेद -तमहर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे ।
नव नभ नव विहंग-वृन्द को, नव पर, नव स्वर दो ।

उनके कुछ गीत कबीर के पदों से तुलनीय हैं :---

द्वार पर तुम्हारे।
खड़ा हुआ विश्व कर पसारे ।
ऐसी दयनीयता हुई है क्या, फूली है, भीतरी रुई है क्या।
दुनिया में लड़े तो दुई है क्या, बिसरा यह नहीं रे बिसारे ।
समझाते समझाते चले गए, सोचा है, तो हम कब छले गए,
उल्टा तो बिगड़े के चले गये, हार गया परा जो नरे पारे ।

----आराधना पृ० १६

उपर्युक्त कविता में कवि ने ब्रह्म के महत्व को स्पष्ट किया है। सारा संसार उसका अनुभव कर आत्म शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

उनके कुछ गीतों की भाव व्यंजना तुलसी के पदों की ही भांति है । जिस प्रकार तुलसी दास जी उन्हें पतित पावन कह कर गणिकादि को मुक्त करने वाले मानते हैं उसी प्रकार का भाव निराला जी के गीतों में मिलता है। वे भी सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्ति की कामना करते हैं । एक उदाहरण से यह साम्य स्पष्ट हो जाता है :---

कामरूप, हरो काम, जपूं नाम, राम , राम ।
शबरी, गज, गणिकादिक, हुए दृष्ट प्रासरिक,
पारिक मैं सांसारिक अविधा हो व्यंग्य नाम ।
गणता मेरी न गई, आई फिर ज्योति नई,
तरी दिव्यता उनई, तेरी मेरी प्रकाम ।

---- आराधना पृ०१४ ।

मैं हरि पतित -पावन सुने ।
मैं पतित तुम पतित पावन दोउ बानक बने ।।१।।
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ।।२।।
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये आपने ।।३।।
विनय पत्रिका पद १६० ।

राष्ट्रीय वन्दना :

इस प्रकार की वन्दनाओं में भारतवर्ष की मातृ रूप में वंदना की गई है । भारती की वंदना--- राष्ट्रीय आदर्शों और मानवता के गुणों का अभिव्यंजन करती है । इसके सारे प्रतीक भारतीय परम्पराओं के अनुरूप हैं । प्राण प्रणव ओंकार में --- भारतीय चरित्रदर्शन विश्व मानवतावाद की अभिव्यक्ति है ।[१] साथ ही साथ विजय की भी कामना है ।

भारति जय, विजय करे कनक -शस्यकमल धरे ।
लंका पद तल -शतदल, गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल स्तवकर बहु-अर्थभरे ।
तरु-तृण-वन-लता-वसन, अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल -कण धवल-धार हार गले ।
मुकुट शुभ्र हिम -तुषार, प्राण प्रणव ओंकार ।
ध्वनित दिशाएं उदार, शतमुख-शतरव-मुखरे ।
---- अपरा गीत ।

राष्ट्रीय गीतों में उद्‌बोधनात्मक तत्व विद्यमान हैं । वे देश के प्रति कर्त्तव्य को महत्व देते हैं । "दे मैं करूं वरण" में इसी प्रकार का तत्व है :--

---

१- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी -- आधुनिक काव्य रचना और विचार पृ० १४७

दे मैं करूं वरण
जननि, दुख हरण पदराग रंजित मरण ।
भीरुता के बंधे पाश, सब छिन्न हों ,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों ,
आज्ञा जननि दिवस निशिकरूं अनुसरण ।
---- अपरा पृ० ३०।

इस प्रकार की वन्दनाओं में लोकतत्त्व की भावना सर्वोपरि है जो कवि के मानव प्रेम का स्पष्ट प्रदर्शन करती है । इस प्रकार की वंदनाएं सगुण भक्तों की भांति हैं परन्तु इन्हें भक्ति-भावना से ओत-प्रोत न मानकर आन्तरिक एवं सामाजिक विषमता से उद्भूत मानना चाहिए ।

स्तुति :

निराला जी की स्तुतियों में उच्चकोटि की भक्ति भावना और दार्शनिकता है जो उन्हें तुलसी के समकक्ष लाने में समर्थ है । यह स्तुतियां सामाजिक अनीतियों, वैषम्यों और विकृतियों से क्षुब्ध होकर लिखी गई हैं जो उनके आन्तरिक संघर्षों की परिचायक हैं । वे मानव कल्याण के लिए ही उस परम ज्योति का स्तवन करते हैं :---

तिमिर दारण मिहिर दरसो । ज्योति के कर अन्धकारा--
भार जग का सजग परसो ।
खो गया जीवन हमारा, अन्धता से गत सहारा,
गात के सम्पात पर उत्थान देकर प्राण वरसो ।
क्षिप्रतर हो गति हमारी, खुले प्रति-कलि-कुसुम-क्यारी,
सहज सौरभ से समीरण पर सहस्त्रों किरण हरसो ।।
---- अपरा पृ० १८४

इसी प्रकार इन्होंने राम को अशरण शरण कह कर आकांक्षा पूर्ति की कामना की है :--

अशरण शरण राम, काम के छविधाम।
ऋषि-मुनि-मनोहंस, रवि-वंश-अवतंस,

बहु विध तुम्हारा उपाख्यान गाया ,
फिर भी कहा अन्त अबभी न पाया ।
मूर्त हो या स्फूर्त तुम कुछ न आया,
पदों पर दण्ड प्रणाम के सम्भार ।।

---- आराधना पृ०२१ ।

निरालाजी की दूसरे प्रकार की प्रार्थनाओं में सामाजिक उत्पीड़न परिलक्षित हुआ ~~की ओर लक्ष्य~~ है । वे इस प्रकार की प्रार्थनाओं में जन-जीवन के विकास एवं त्राण की कामना करते हैं । लोकतत्व से ओत-प्रोत होने के कारण उनमें शिव का अंश विद्यमान है :---

जगको ज्योतिर्मय कर दो ।
प्रिय कोमल-पद-गामिनि मन्द उतर
जीवन्मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वीपर
हँस -हँस निज पथ आलोकित कर,
नूतन जीवन भर दो ।
जगको ज्योतिर्मय कर दो ।

--- परिमल (प्रार्थना)

निराला जी समस्त विश्व को वैभव सम्पन्न देखना चाहते हैं । मानव उत्पीड़न का अन्त और मानवोत्थान ही उनकी इन प्रार्थनाओं का केन्द्र विन्दु है:--

पालो तुम सकल शकल। हो धरा सजल श्यामल।
भरो धान, भरो मान, करो लोक का विधान,
तानो नूतन वितान, प्राणों को करो सफल ।
किरण खड़ी हो इकटक , पातों के पड़े पलक
मिले अर्थ्यद्धि, शक्ति अथक, पुरें विश्व के सम्बल ।

---- आराधना पृ० ३८

इस प्रकार निराला जी की प्रार्थनाओं में विशुद्ध धार्मिक वृत्ति के स्थान पर मनोवैज्ञानिकता और सामाजिक आत्म निवेदन है ।

जल जीवन में मच्छ तुम कर्दम में वन,
भू जड़त्व में शूकर, वनचर में नृसिंह तन,
आदि मनुज वामन, शूरों में राम परशुपण,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन,
आज लोक संघर्षों से जब मानव जर्जर,
अति मानव बन तुम युग सम्भव हुए घरापर ।
अन्न प्राण मनके त्रिदलोंका कर रूपान्तर ,
वसुधा पर नव स्वर्ग सजोने आए सुंदर ।

---- स्वर्ग किरण पृ० ६३

पन्त जी की कुछ स्त्रोत्रात्मक रचनाएं हिमालय और मातृभूमि की वन्दना के रूप में है । हिमालय की वन्दनात्मक कविता में कवि सत्यं शिवं सुंदरम् की कल्पना करता है । इसमें उसपर अरविन्द दर्शन का पूर्ण प्रभाव पड़ा है और यही कारण है कि वह उसे महाश्चर्य से विस्मित होकर देखता है :--

जय हिमाद्रि जय हे । जयति स्वर्ग भाल अमर
जयति विश्व हृदय शिखर, जयति सत्य, शिवं सुंदरं
शाश्वत अक्षय हे ।
कौन परम लक्ष्य मन के समक्ष ।
अर्ध्व प्राण मौन वक्ष, सुरनर विस्मय हे ।

---- सौवर्ण काव्य ।

मातृभूमि की वन्दना में कवि उसे पंचशील की धरणी कह कर संबोधित करता है । इसमें भी कवि लोक-कल्याण, नव जागरण, एवं विश्व-कल्याण के लिए ही मातृभूमि का आह्वान करता है :--

जागो पंचशील की धरणी, जीवन शौर्य जगाओ ।
भू की अपराजेय चेतने, नव युग चरण बढ़ाओ ।
तेरे उन्मद पद-चालन से कंपे मृत्यु भय, संशय,
अंग भंगि से जीवनगरिमा फूटे चिरमंगल मय,
हाव भाव से विजय हर्ष नव जनोत्कर्ष बरसाओ ।
तेरे श्वासों में ज्वाला हो अधरों में मधुमादन ,

तुहिन श्रृंग बज उठें तूर्य बन लो, भू गगन निनादित,
बुद्धि ही अरि फिर अगंद प्रण भारत से पदमर्दित ।
स्त्रीनर,तन मन धन यौवनकी आहुति देने आओ ।
रक्तदान का पुण्य पर्व यह भू की प्यास बुझाओ ।।
जग सह जीवन की धरणी नव युग चरण बढ़ाओ,
ओ जन भू की शान्ति पीठ, फिर जीवन-शौर्य जगाओ ।

---धर्म युग १०-३-१९६३ ।

इसी प्रकार पंत की "भारतमाता" ग्राम वासिनी,' कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है । "प्रसाद का अरुण यह मधुमय देश हमारा" नामक गीत कल्पना प्रधान है उसमें देशी भाषा तथा प्रतीकों की बहुलता है अत: उसमें राष्ट्रीय गीत बनने की क्षमता नहीं है । पंत के भारतमाता ग्राम वासिनी में पराभव का चित्र है , औदात्य तथा चारित्रिक संदेश का अभाव है, अत: इसमें भी राष्ट्रीय गीत की क्षमता नहीं है । निराला के भारति जय विजय करे गीत में उदात्तता तथा संस्कृतनिष्ठ पदावली की नियोजना है । यह राष्ट्रीय आदर्शों और मानवता के गुणों का अभिव्यंजन करती है । इसके सारे प्रतीक भारतीय परम्पराओं के अनुरूप हैं[1] ।

" स्वर्ण किरण " में कवि ने भविष्य की समस्याओं के समाधान के लिए वैदिक ऋषि के रूप में प्रार्थना की है:--

असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिगमय
मृत्योर्मा मृतं गमय ।

आर्ष मन्त्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अन्तर्नभ में दिव्य स्फुरण भर
असत तमस और मृत्यु सलिल में हमें पारकर
सत्य,ज्योति, अमृतत्व धाम के जीवन ईश्वर ।

---- स्वर्ण किरण ।

१ - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक काव्य - (नव औ विचार पृ० १४७

स्वर्ण धूलि में कवि सत्य, ज्योति और अमृत तत्व से कुछ अधिक चाहता है :--

मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर,
मुझे तमस से उठा दिखाओ ज्योति छोर ।
मुझे मृत्यु से बचा बनाओ अमृत भोर,
बार बार आकर अन्तर में हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रूद्र करो मेरी रक्षा नित ।।

---स्वर्ण धूलि ।

वास्तव में पंत जी की रचनाओं में एक प्रवाहमान चेतना है जो 'यथार्थ और आदर्श, वास्तविक और काल्पनिक, धरती और आकाश, देह और आत्मा, एकान्त और समाज के बीच समन्वय'[1] की स्थापना करती है । उसमें जीवन की आकांक्षा के साथ साथ उस दिव्य ज्योति का आह्वान भी है जिसे वे नव-उषा के रूप में स्मरण करते हैं :--

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
आओ नव क्षितिजों पर आओ ।
स्वर्गिक शिखरों के प्रकाश में ,
भू के शिखरों को नहलाओ ।

------- स्वर्ण धूलि ।

इस प्रकार पंत जी की स्तोत्रात्मक रचनाएं उतनी भक्ति प्रधान नहीं हैं जितनी निराला की हैं । डा० नगेन्द्र ने इस विषय में लिखा है --- ' यह सत्य है कि उन्होंने भी केवल मनोरम रूपों को ही ग्रहण किया है, प्रसाद और निराला की भांति विराट और अनगढ़ रूपों को नहीं परन्तु उन्होंने इस क्षति की पूर्ति अपनी सामग्री के सूक्ष्म नियोजन द्वारा कर ली है'[2]।

---

१- डा० भगीरथ मिश्र-- कला साहित्य और समीक्षा पृ० ३३८

२- डा० नगेन्द्र ---- पन्त का नवीन जीवन दर्शन
(सुमित्रा नंदन पंत, काव्य कला और जीवन
दर्शन पृ० २७ , स० शचीरानी गुर्टू )

महादेवी वर्मा :

'आचार्य राम चंद्र शुक्ला ने महादेवी वर्मा को ही छायावादी कवियों में रहस्यवाद के भीतर माना है । जैसा उन्होंने लिखा है ---- 'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं । उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही उनके हृदय का भावकेन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएं छूट छूट कर झलक मारती रहती हैं । वेदना से इन्होंने अपना स्वभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं'[1] । कुछ विद्वानों ने उनकी तुलना मीरा के साथ की है[2] । उनके गीत उनकी असीम वेदना के ही प्रतीक हैं । परन्तु इन गीतों के मूल में वैराग्य की प्रधानता है, वह वैराग्य 'महात्मा बुद्ध की भांति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दु:ख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासिनियों सरीखी एक चिंता -मुद्रा एक विरक्ति, एक तड़प, शान्ति के प्रति एक अशान्ति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है'[3] । महादेवी जी ने प्रकृति में अपरोक्ष अनुभूति का त्याग कर परोक्ष को महत्व दिया है । 'सगुण-साकार, सगुण निराकार और निर्गुण-निराकार । एक दिव्य व्यक्तित्व पर, वह प्रेममय हो, करुणामय हो अथवा शक्तिमय या आनंद मय, आस्था रखने वाले सगुण साकार के अनुयायी होते हैं । महादेवी जी की अधिकांश रचनाओं का यही आधार दीखता है ।'[4] इस आधार की अभिव्यक्ति उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में हुई है ।

उनकी रचनाओं में अद्वैत, द्वैत और स्थूल तीनों के भाव मिल जाते हैं :--

अद्वैत--- वीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं ।

द्वैत --- तुम सो जाओ मैं गाऊं

मुझको सोते युग बीते तुमको यों लोरी गाते

अब आओ मैं पलकों में स्वप्नों से सेज बिछाऊं ।

---

१- आचार्य राम चंद्र शुक्ल-- हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ३६५

२- डा० नगेन्द्र -- पंत का नवीन जीवन दर्शन (निबंध)

३- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी -- भामा का दार्शनिक आधार (निबंध)

४- रघुवीर प्रसाद सिंह --- मीरा और महादेवी (निबन्ध)

स्थूल --- कह दे मां क्या देखूं
देखूं खिलती कलियां या प्यासे सूखे अधरों को
या मुरझाई पलकों से झरते आंसू कम देखूं ।

शंकराचार्य के मायावाद का भी श्रेष्ठ चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में विद्यमान है जिनमें कवियित्री जी ने ब्रह्म को चिर आनंदमय मानकर संसार को दुःखमय कहा है :---

तुझ में अजस्त्र हंसी है, इसमें अजस्त्र आंसू जल,
तेरा वैभव देखूं या , जग का क्रन्दन देखूं ।
------ यामा ।

उनकी रहस्यवादी भावना का शुद्ध रूप अनेक कविताओं में प्राप्त होता है । अज्ञात रूप में प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा उनके इन गीतों में परिलक्षित होती है :---

मैं तुमसे हूं एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश ।
मैं तुमसे हूं भिन्न, भिन्न ज्यों
घनसे तड़ित विलास ।

डा० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है ---'संभवत: महादेवी जी को पीड़ा इसलिए प्रिय है, करुणा इसलिए अच्छी लगती है कि इससे जीवन की साधना पूरी होती । आधुनिक कवि की भूमिका में वे स्वयं लिखती हैं --- 'यही आनंद की चरमावस्था तक ले जाने का साधन है ।'[1] इसीलिए वे प्रियतम में पीड़ा का अनुभव करना चाहती हैं :----

परशेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की पीड़ा ।
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी पीड़ा ।।

---

१- डा० इन्द्रनाथ मदान--- कवियित्री महादेवी वर्मा (निबन्ध)

वे अपने प्रियतम का एक बार दर्शन करना चाहती हैं उसका आगमन उनको आत्मिक शान्ति देसकेगा :---

जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग-भरा उन्माद राग,
आंसू लेते वे पद पखार, हंस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद, छा जाता जीवन में वसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग, आंखें देतीं सर्वस्वबार !
------ यामा ।

उनकी आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो चंद्रमा का उसके प्रतिबिम्ब से होता है :---

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान ।
जिसे खींच लाते स्थिर कर कौतूहल के बाण ।

संसार के समस्त पदार्थों में गति उपस्थित करने वाली शक्ति कण कण में व्याप्त रहने पर भी दूर दिखाई पड़ती है और विरहणी आत्मा उसी का स्मरण कर व्यथा की ज्वालाओं से विदग्ध होती रहती है :---

चित्रित तू मैं हूं रेखाक्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं, सीमा का भ्रम,
काया छाया ये रहस्य मय ! ----- नीरजा ।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ।

'नीरजा' के गीतों में अभिव्यक्ति दु:खवाद लौकिक सीमाओं से ऊपर उठकर अलौकिक आनंद पथ का विस्तार करता हुआ है :--
तुम दु:ख बन इस पथ से आना ।
शूलों में नित मृदु पाटल-सा, खिलने देना मेरा जीवन ,

क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय का बिंधवाना
नित जलता रहने दो तिल तिल अपनी ज्वाल में उर मेरा
इसकी विभूति में, फिर आकर अपने पद चिंह बना जाना ।
तुम दुख बन इस पथ से आना ।।
---- नीरजा ।

'दीप शिखा' की 'गीतों ने परविया की अपर्थिवताली, वेदान्त के अध्ययन की छायामात्र ग्रहण की लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव-प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदय मय और हृदय को मस्तिष्क मय बना सका । [1] उनके हृदय में अज्ञात के प्रति एक जिज्ञासा ही प्रकट हो सकी है :---

लौ ने वर्ती को जाना है,
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने रज का अंचल पहचाना है ।
चिर-बंधन में बांध मुझे घुलने का वरदे जाना ।
---- दीपशिखा ।

उनकी वेदना तपकर निखर उठती है और अत्यंत सशक्त संवेदन उपस्थित करती है :---

देव अब वरदान कैसा ?
वेध दो मेरा हृदय माला बनूं प्रतिकूल क्या है ।
मैं तुम्हें पहचान लूं इस कूल तो उस कूल क्या है ।
छीन सब मीठे क्षणों को इन अथक अन्वेषणों को
आज लघुता ले मुझे दोगे निठुर प्रतिदान कैसा ?
जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना ।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना ।
इन्दु-धनु से नित सजी-सी, विद्यु हीरक से जड़ी सी ।
मैं भरी बदली रहूं चिर मुक्ति का सम्मान कैसा ?

---

१- डा० नगेन्द्र ---- दीपशिखा (निबन्ध)

अपने दुःख में भी अभाव में भी उन्हें ऐसा कुछ अनुभूत नहीं होता ~~कककि~~ जिससे वे संतापित हों । वे अपनी हीनता में भी यह आकांक्षा करती हैं :---

घन बनूं वर दो मुझे प्रिय ।
जलधि-मानस से नव जन्मपा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में,
सजल श्यामल मंथर मूक-सा ।
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले
नित घिरूं झर-झर मिटूं प्रिय
घन बनूं वर दो मुझे प्रिय ।

----यामा पृ० २२६

स्वामी विवेकानंद और राम कृष्ण परमहंस के कारण भारतीय चिन्ताधारा अद्वैतवाद से प्रभावित हुई औ इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ । महादेवी जी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिंतन का रूप उनके भावों का आलम्ब बना जिससे उन्होंने युग-युग का सम्बन्ध स्थापित कर अपना करूण-मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया ।[1]

उनके कुछ गीतों में तादात्म्य और अद्वैत की भावना विद्यमान है । तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता की ओर ध्यान आकर्षित कर देती है :---

तुम मुझ में प्रिय । फिर परिचय क्या ।
तारकमें छबि प्राणों में स्मृति, पलकों में नीरव पद की गति
लघु उर में पुलकों की संसृति भरलाई हूं तेरी चंचल
और करूं जगमें संचय क्या, तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या।

---- नीरजा ।

---

१- शची रानी गुर्टू --- महादेवी वर्मा, काव्य कला और जीवन दर्शन पृष्ठ - २४४ ।

महादेवी जी की वेदना इतनी मुखरित है कि वे वर्षा में उसे विद्युत रूप में देखना चाहती हैं :---

पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली
अरुण सजल पाटल बरसाती
तमपर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर दर्पण सागर,
आंज रही दिशि दृग इन्दीवर ।
जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों पर पगधर -धर ।।
---- यामा ।

महादेवी जी ने खण्ड में अखण्ड और सीमित में असीम को देखने की चेष्टा की है :--

विश्व में वह कौन सीमा हीन है,
हो न जिसका खोज सीमा में मिला।
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?
------ यामा ।

जहां एक ओर उनकी कविता छायावाद से सम्बन्धित है वहां दूसरी ओर उसमें हिन्दी-भक्त कवियों की रहस्यवादी परम्परा भी है । परन्तु उन्होंने परम्परागत काव्य-साधना को एक नया रूप दिया है :---

हे युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया
आज लघु जीवन किसी
नि:सीम प्रियतम में समाया । ---- यामा ।

प्रत्येक साधक मिलन की आकांक्षा करता है परन्तु महादेवी के प्रेम की विशिष्टता यह है कि वे मिलन नहीं चाहती हैं। यदि वे विरह में दग्ध न होंगी तो उनका अस्तित्व ही मिट जायेगा। वे वेदना में ही प्रियतम का अनुभव कर कहती हैं :--

ऐसा तेरा लोक वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
जलना जाना नहीं, नहीं ---
जिसने जाना मिटने का स्वाद
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव। अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार। --- नीहार

कुछ रचनाओं में लोक तत्त्व और देश-कल्याण की भी भावना विद्यमान है वे व्यथित भारतवासियों के लिए अपने आराध्य से कहती हैं :--

कहता है जिनका व्यथित मौन
हमसा निष्फल है आज कौन?
निर्धन के धनसी हास-रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे ओठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार।
फिर एक बार बस एक बार।. ---- नीहार।

प्रसाद, निराला, पंत की भांति ही महादेवी जी ने भी हिमालयका वंदन किया है :--

हे चिर महान।
यह स्वर्णरश्मि छू स्वेत भाल,
बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इन्द्र धनुष,
परिमल मलमल जाता बतास।

पर राग हीन तू हिमनिधान।
जगमें गर्वित झुकता न शीश
पर अंक लिए है दीन क्षार
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार ।
कितने मृदु कितने कठिन प्राण ।

----- यामा ।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने महादेवी जी के विषय में लिखा है ------' महादेवी जी की साधना -भूमि प्रकृति है । प्रकृति को उन्होंने अंत में सूफियों की भांति परमतत्व की ही साधना में निरत देखा है । काव्य की दृष्टि से प्रकृति उनकी सखी है वह उद्दीपन है, आलम्बन नहीं । उनकी कविता का साध्य या लक्ष्य ब्रह्म ही है । वेदना की इतनी अधिक विवृत्ति है कि 'तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा ।' वेदना में वे आवृत हैं । हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता पर सूफियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसमें संदेह नहीं कि महादेवी जी ने उसे शुद्ध भारतीय अद्वैतवाद के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है । सूफियों का मेल विशिष्टाद्वैत से कहीं अधिक मिलता है पर महादेवी जी ने शंकर अद्वैत के मेल में अपनी रचना को रखकर बहुत कुछ कबीर से संतों का ढंग ग्रहण किया है ।[१] इस आधार पर महादेवी जी के गीतों में स्तोत्र-साहित्य की प्रचुरता हो जाती है ।

<u>छायावादी युग के अन्य स्फुट कवि :</u> प्रसाद, पंत, महादेवी एवं निराला के अतिरिक्त इसकाव्य-काल में और भी अनेक कवि हैं जिनकी रचनाओं में स्तोत्रात्मक अंश विद्यमान हैं । ये कवि दो प्रकार के हैं :---

(१) खड़ी बोली के कवि
(२) ब्रज भाषा एवं अवधी के कवि

<u>खड़ी बोली के कवि :</u>

<u>अनूप शर्मा :</u>

शर्मा जी के 'वर्द्धमान' एवं 'शार्वाणी' काव्य अत्यंत प्रसिद्ध

---

१- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी का सामयिक साहित्य पृ० ६८

हैं । वर्द्धमान महाकाव्य में ऊषा, शारद, बर्द्धमान एवं मातृभूमि की आराधना विषयक अनेक रचनाएं। इनकी इस प्रकार की रचनाओं का एक उदाहरण प्रमाण स्वरूप दिया जा रहा है :--

अनूप भारतवर्ष धन्य है धरित्रि कोई इससी न अन्य है ।
इसी महीमध्य अनादि काल से, समस्त तीर्थंकर जन्म ले रहे ।
प्रसिद्धि नि:श्रेयस-प्राप्ति के लिए यही महापावन पुण्यदेश है ।
यही सब्बाकर्म-विनाश कार्य - के लिए तपस्वी सुर भी पधारते।

---बर्द्धमान महाकाव्य-प्रथम सर्ग

शर्वाणी में देवी के विभिन्न रूपों में स्तुति की गई है और साथ ही साथ अस्त्र शस्त्रों का भी वंदन किया गया है । शर्वाणी का नखशिख वर्णन श्रेष्ठ और कलात्मक है जिसे अगले अध्याय में स्पष्ट किया जायेगा । इसमें संस्कृत स्त्रोत्रों पर की 'नखशिख-वर्णन' परम्परा का अनुसरण किया गया है ।

## बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' :

छायावादी कवि परम्परा में 'नवीन' जी की रचनाओं में भी कुछ स्त्रोत्रात्मक स्थल हैं जिसमें उस अदृश्य शक्ति की वन्दना स्वरूप[2] अनेक अंश है। कवि ने भारतवर्ष का भी स्तवन किया है । एक उदाहरण पर्याप्त है :--

१- वह तू ली जिसने सन्ध्या की मेघ मंडली थी रंग डाली
जिसने पचरंगी सतरंगी रंग से रंगदी थी घन जाली ।
वह भी श्याम वेदना रंग में डूब बन गई है अधिपाली,
अब भी क्या न पधारोगे, प्रिय गगन-पानसे आज उतरते,
देखो, हम तोतक स्वागत को खड़े हुए हैं डरते-डरते ।।[3]

२- हिन्दुस्तान हमारा है[4] कविता में मातृभूमि की प्रशस्ति गाई गई है ।

---

१- जय हनुमान पृ० ३
२- रश्मि रेखा छंद ३,५
३- रश्मि रेखा पृ० १२५-१२७
४- कवि भारती ---- सं० सुमित्रानंदन पंत पृ० २८२-२८३

रामधारी सिंह 'दिनकर' :

दिनकर जी आधुनिक युग में अपनी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कविताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका कुरुक्षेत्र एवं रश्मिरथी काव्य प्रसिद्ध है। 'रश्मिरथी' में कर्ण द्वारा कृष्ण से की गई प्रार्थना का एक उदाहरण दिया जाता है :--

पर एक विनय है मधुसूदन। मेरी यह जन्म कथा गोपन
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो इसे दबा रहिए।
वे इसे जान यदि पायेंगे, सिंहासन को ठुकरायेंगे।
साम्राज्य न कभी संभालेंगे, सारी सम्पत्ति मुझको देंगे।
मैं भी न उसे रख पाऊंगा, दुर्योधन को दे जाऊंगा।
पांडव वंचित रह जायेंगे, दुःख से छूट वे पायेंगे।।

--- रश्मिरथी पृ० ४६

सोहनलाल द्विवेदी :

द्विवेदी जी राष्ट्रीय कवि हैं। उनके पूजा-गीत में ईश्वर की प्रार्थना के अतिरिक्त खादी एवं राष्ट्र ध्वज की भी वन्दनाएं हैं जो प्रमाण स्वरूप नीचे दी जा रही हैं :----

ईश्वर प्रार्थना :- अज्ञानियों को मार्ग दिखाओ, मायाजाल से मुक्त करो।
कातर एवं दुखी सभी नर, करुणा वान बनो।।
उनको भी सद्बुद्धि राम दो, भूले हैं जो नाम तुम्हारा,
भूले हैं जो धाम तुम्हारा, उनको श्रद्धा अकाम दो।
भटक रहे मिथ्या माया में, आत्म भूल उलझे काया में,
उनको भी गति मति प्रकाश दो।
व्यथित ग्रथित मुख, दुख से कातर, ढरो आज उनपर करुणाकर,
उनको भी दुख में विराम दो।

---- पूजा गीत।

राष्ट्रध्वज :- यह स्वतंत्र भारत का जयध्वज प्रबलतिरंगा प्यारा ।
चमक रहा है नील गगन में बन जगमग ध्रुवतारा ।।
देख देख अपना यह जयध्वजनम पर नित लहराता ।
ऊंचा उठता अपना मस्तक जननी की जय गाता ।।

^ ^ ^ ^

भारत के घर घर में फहरे यह विजयी ध्वज अपना ।
पूर्ण करे सुंदर स्वराजका सुंदर सुंदर सपना । ।
रचे देश यह जिसपर न्योछावर हो भूतल सारा ।
यह स्वतंत्र भारत का जयध्वज तरल तिरंगा प्यारा ।। [1]
---राष्ट्रगीत से ।

श्यामनारायण पाण्डेय :

पाण्डेय जी आधुनिक युग के वीर रस के कवियों में सर्व श्रेष्ठ हैं । उनके ग्रन्थों में त्रेता के दो वीर, हल्दी घाटी, जौहर एवं जय हनुमान प्रसिद्ध है । इनमें हिन्दी स्तोत्रों के सभी रूपों का प्रयोग हुआ है साथ ही साथ कवि ने राम, लक्ष्मण, शिव, हनुमान, सीता, पार्वती, चंडी आदि का उनके द्वारा स्तवन किया है । उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इसके प्रमाण हैं :--

पावन विलासमय नमस्कार, हैलत्ति-लास-मय नमस्कार,
विधिमय विलासमय नमस्कार, हे हे विहास मय नमस्कार।
जिस अलख-ज्योति से रवि मयंक शोभित करते नभ नीलकंठ,
उस दिव्य-ज्योति को बार-बार करता नत मस्तक नमस्कार।।
विधि-मय विभूति-मय नमस्कार, हे ब्रह्म, अनामय नमस्कार।
अनुरा राग-मय नमस्कार, हे विराग-मय नमस्कार ।।[2]।।
--- शा

शारद वन्दना :- मां मैं तेरे पांव पड़ूं तू मुझको तजकर जा न कहीं ।
वीन बजे मेरे अन्तर में आसन और लगा न कहीं ।।

---

१- सोहनलाल द्विवेदी--- पूजा गीत पृ० ८८(२) हल्दी घाटी-- पृ०१
~~२- श्यामनारायण पाण्डेय हल्दी घाटी पृ० १~~

एक एक झंकृति से झर झर रसकी बूंदे छहर उठें ।
भाव-कल्पनाओं की लहरें जन-मन-मन में लहर उठें ।।
कवि गोष्ठी विद्वत् समाज में मुझ चंचल को छोड़ न मां ।
उंगली धर ले खो जाऊंगा पल अंचल को छोड़ न मां ।।[1]

कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह :

कुशल एकांकीकार एवं कवि कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह की कविताओं में अनेक स्तोत्रात्मक स्थल हैं जिनमें राष्ट्रीय तत्वों के साथ-साथ आध्यात्मिकता उच्चकोटि की है । उनकी हिमालय, भारतभूमि, काश्मीर आदि रचनाएं स्तोत्रात्मक भावनाओं से परिपूर्ण हैं । कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं :---

भारत वंदना :-

भारत हिन्दुओं का देश, वेद की धात्री धरा पंजाब की सविशेष ।
गंउ शुचि काश्मीर-मंडल, पाद-पद्म पुनीत सिंहल,
ऊदधि हिमगिरि-गहन अविकल, आर्य राष्ट्र अशेष ।
वंग अंग, कलिंग, उत्कल मगध, चेदि , दशार्ण कौशल
सिंध, राजस्थान, गुर्जर, महाराष्ट्र प्रदेश ।

---- शम्पा पृ० ९५-९६।

हिमालय वंदना :

बंध रही दृष्टि, सम्मुख अलोक आलोक-सृष्टि ।
यह नील गगन
ले सूर्य चंद्र तारा अगणान,
बसरता, भावमय किरण-किरण
आतप में ज्योत्स्ना में क्षण-क्षण ।

x x x x

---

१- जय हनुमान पृ० ३

ज्वाला माला वन उठा जाग,

हिमगिर युग-युग की नींद त्याग,

खुल गया रुद्र का प्रलय-नयन

कम्युनिस्ट-पाप जलता दाण-दाण ।

---शम्या--पृ० ४-६ ।

## रामानंद तिवारी :

आपका 'पार्वती' महाकाव्य इस युग का एक प्रसिद्ध काव्य है । इसमें कवि ने अनेक स्तोत्रात्मक रचनाओं में ब्रह्मा, शिव, पार्वती, इन्द्र आदि का स्तवन किया है । वंदना, स्तुति एवं प्रार्थना के अनेक उदाहरण इस रचना में उपलब्ध होते हैं । जिनमें से कुछ उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं :--

१- सब प्रकार कर युद्ध असुर से हारे कितनी बार,
शेष अभी क्या साधन जिससे होगा इसका उद्धार ।
देव लोक में गुरो। आपकी तत्वदर्शिनी दृष्टि,
करती रहे सदैव हमारे-मंगल-पथ की सृष्टि ।।

--- पार्वती महाकाव्य पृ० ६०।

२- प्रभो आपके चतुर्मुखों से सर्व दृष्टि मय पूत ,
चतुर्वेद की पुण्य वाहिनी वाणी हुई प्रसूत,
त्रिगुणातीत त्रिलोक सृष्टि के पावन मंगल-धाम ।
देव-देव ! पावन चरणों में करते देव प्रणाम ।।

-- पार्वती महाकाव्य,पृ० ६१।।

## डाक्टर बल्देव प्रसाद मिश्र :

आधुनिक युग के कवियों में मिश्र जी का भी एक विशेष स्थान है । आपकी रचनाएं ब्रज भाषा एवं खड़ी बोली दोनों में हैं । इन रचनाओं में रामराज्य कौशल किशोर, साकेत संत, श्याम शतक आदि उल्लेखनीय हैं । डा०

मुंशीराम शर्मा ने लिखा है ----"साकेत सन्त का रचयिता ऐसे ही विरल विज्ञों की श्रेणी में है जो अपनी सहृदयता और निर्मल बुद्धि द्वारा विश्व में वन्दनीय पद प्राप्त किया करते हैं।"[1] काव्य-साहित्य में मिश्र जी ने उदात्त नामक एक रस की ही उद्भावना की है जिसकी उपस्थिति के प्रबल प्रमाण उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा प्रस्तुत किए हैं। साकेत सन्त, रामराज्य एवं श्याम शतक के अनेक स्थल स्तोत्रात्मक हैं जिनमें रचना शैली के औदात्य का पूर्ण ध्यान रखा गया है। आधुनिक युग के स्तोत्रकारों में उनका स्थान अत्यन्त प्रमुख माना जा सकता है। साकेत सन्त के प्रारम्भ में भरत को राममय मानकर उनकी वन्दना की गई है :----

धन्य था कलंक निष्कलंक कर मान सको,
मानव का जिसने प्रकाश छिटकाया है।
धन्य था विरह वह जिसने मथे हृदय
और भव्य भक्ति का अमृत बिखराया है।।
धन्य वह सन्त था कि राम हेतु रामसे भी
दूर हट, राम के समीप रहा आया है।
धन्य वह वार भारती की मंजु वीन का था,
जिसके स्वरों ने हमें भरत दिलाया है।
इस एक शब्द में हजारों रस रीतियां हैं,
इस एक शब्द ने करोड़ों व्यंग पाए हैं।
इस एक शब्द के सहारे कोटि कोटि जीव,
लोक परलोक जीत राम में समाये हैं।
इसने। समझ ले तुझे जो रस की हो चाह,
भक्त भगवन्त में कहां के भेद छाये हैं।।
अभिराम भावेस जगाने जन-जीवन के,
मेरे जान राम ही भरत बन आये हैं।
---- साकेत सन्त।

---

१- डा० बल्देव प्रसाद मिश्र --- अभिनंदन ग्रन्थ पृ० १०८।

रामराज्य महाकाव्य में कवि ने राम के महान गुणों का विवेचन करते हुए उनकी वन्दना की है :---

मानव भी श्रीराम हैं, अतिमानव श्रीराम ।
उसी रूप में वे सुलभ जिसको जिससे काम ।।१।।
त्रेतायुग के नहीं राम तो युग-युग के प्रेरणा धाम हैं ।
पूर्ण पुरातन चिरनवीन वे, भाव स्त्रोत हृदयाभिराम हैं ।।
राम सत्य, रामत्व और भी सत्य की जिसकी चाह हमें है।,
नई परिस्थिति के बीहड़ में सजग देखनी राह हमें है ।।३।।

--- वैराग्य शतक पृ० ३०।

प्रस्तुत पंक्तियों की भाव प्रवणता माधुर्य एवं रचना-चातुर्य महत्वपूर्ण है ।

मिश्रजी की रचनाएं वैचारिक मौलिकता, उदात्त कल्पना एवं गहरी भावुकता से परिपूर्ण हैं । उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में भी उक्त रचना वैशिष्ट दृष्टिगोचर होता है जो कि उपर्निदिष्ट उद्धरणों से भी प्राप्त किया जा सकता है ।

ब्रज भाषा के पुराने कवियों की-सी सरस भाषा, रचनागत कलात्मकता तथा भक्त कवियों की-सी भाव विभोरता उनकी श्याम शतक में प्राप्त होने वाली स्तोत्रात्मक रचनाओं में मिलती है :---

उर अन्तर सूनो है बांसुरि सो, सुरकी सुख-धाम सुधा धरिदै।
उन छिद्रन में अधरामृत दै हियके इन छिद्रन को हरिदै ।।
झकझोरयकै तान प्रतानन अपनाय हमें अपनो करिदै ।
बलि बांसुरी ऐसी बजाउ हरे । मन-माखन में मिसिरी भरिदै ।।

भावानुभूति के साथ-साथ चलने वाले अलंकारों के प्रयोग और भाषा की सफाई उपर्युक्त छन्दों द्वारा असंदिग्ध रूप से प्रमाणित है । 'मन माखन में मिसरी भरिदै' का प्रयोग भाव और कला दोनों ही पक्षों के दृष्टिकोण से अत्यन्त ही उत्कृष्ट बन पड़ा है । इन रचनाओं के अतिरिक्त मिश्र जी का

'वैराग्य शतक' भक्ति भाव प्रधान रचना है जिसमें विषय के अनुरूप ही स्वाभाविक रूप से कतिपय स्तोत्रात्मक छंद आये हैं। इस कृति के एक मात्र भक्ति स्तोत्र में वन्दना का यह उदाहरण उपर्युक्त तत्व का पूर्ण परिचायक कहा जा सकता है।

> रूपरंग रहित, मनोज्ञ मंजु प्यारे रूप, वासना रहित सब वासना के घर हो।
> मन बुद्धि बानी सों अगोचर बने पै नितकवि रसना के शुचि सुंदर सुघर हो।।
> नेति नेति कहत पुकारि एक ओर वेद एक ओर सच्चित अनंद नटवर हो।
> 'राजहंस' ईश्वर अगुन सगुन रूप। सृष्टि सों परे पै नित सचर अचर हो।।

डा० बल्देव प्रसाद मिश्र से संबन्धित पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि आधुनिक काल के स्तोत्र-साहित्य में उनका योगदान निश्चित ही महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। साहित्य की नवीन काव्यधारा और हिन्दी काव्य की प्राचीन परम्परा इन दोनों का सुंदर समन्वय मिश्र जी के कवि व्यक्तित्व में सफलतापूर्वक परिलक्षित किया जा सकता है।

## सियाराम शरण गुप्त :

गुप्त जी की भक्ति-प्रधान रचनाएं 'दूर्वादल' में संकलित है जिनमें आत्म-निवेदन, दैन्य एवं चिंतन का प्राधान्य है। यद्यपि मानव विपत्ति के क्षणों में आत्म-विश्वास खो देता है परन्तु ईश्वर की सत्ता का पूर्णतया निषेध नहीं कर पाता। वह विश्वास की क्षीण 'दीप शिखा' लेकर आराधना में लीन हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात सिद्ध हो जाती है :--

> वैसे ही तो यहां तुम्हारे योग्य नहीं था कोई साज,
> अल्प स्नेह से हाय! एक ही दीप जला रक्खा था आज।
> वह भी हा! बुझ गया अचानक चिंता है अब यही विशेष,
> बाहर से ही लौट न जाओ घर में कहीं अंधेरा देख।।
> पर यह चिंता व्यर्थ, तुम्हें जब आना है तो आओगे।
> मन्द दीप को ही न देखकर, लौट नहीं तुम जाओ गे।

पहुँचेगा तव एक चरण ही द्वार देहली तक जब तक ।
सौ सौ दीपावलियाँ गृह को सुप्रभ कर देंगी तब तक ।।
--- दूर्वादल ।

'अनाथ' काव्य में दुख, दैन्य एवं निराशा से परिपूर्ण यह प्रार्थना उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं में भक्ति भावना से परिपूर्ण कही जा सकती है:--

हुआ हो यदि हमसे कुछ दोष, करो जो प्रभो, हमीपर रोष ।
किंतु जो बालक है निर्दोष, उचित है क्या उनपर भी क्रोध ?
आरहा है जब मेरा अन्त, मृत्यु क्यों आती नहीं तुरंत ?
नहीं देखा जाता अब कष्ट, नहीं होता क्यों जीवन नष्ट ?
विपुल इस भव में है भगवान् नहीं क्या कहीं हमें कहीं भी स्थान?
मृत्यु को तो देने दो ठौर कहा क्या जाय दयामय और ।[१]

<u>राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह :</u>

कवि के राधा-कृष्ण एवं अम्बपाली में अनेक स्तोत्रात्मक अंश विद्यमान हैं जिनमें कवि ने राधा, कृष्ण, बुद्ध, वसंत, गंगा, शशि आदि का स्तवन किया है । इनमें हिन्दी-स्तोत्रों के वंदना और प्रार्थना रूप ही उपलब्ध होते हैं :---

<u>वन्दना :</u> कवि ने अपनी रचनाओं में कृष्ण, वसंत एवं बुद्ध की वन्दना की है ।

कृष्ण :- कृष्ण का वंदन करता हुआ कवि कहता है :--

भक्ति-भाव के बीज हृदय में
डाले और उगाये,
पिता आपने ही भव-भय के
मेरे ताप घटाये ।
लिख डाले उद्गार हृदय के
जैसे भी वे आये ।

---

१- कवि भारती --- पृ० ५३५-५३७

स्वीकृत करो पाद-पद्मों में
जो ये फूल चढाये ।।[1]

वसंत :- अम्बपाली वसंत का गुण-गान इसलिए करती है क्योंकि उसी के आगमन से पृथ्वी पर स्वर्ग आ जाता है ।

तरु- पल्लव नव जीवन पा लेते हैं --
हे मृदु वसंत, हे नव-आगत
मधुपर्क हाथ में लेकर निज कहती स्वागत-स्वागत ।।
आमों पर वंदन वार लगे, द्रुम द्रुम पर कोयल प्रेम पगे ।।
फूलों के लघु -लघु दीप जगे, तेरे संगी-साथी शाश्वत ।

^ ^ ^ ^

हे मृदु वसंत हे नव-आगत ।।[2]
---- अम्बपाली ।

**बुद्ध :**

बुद्ध के दिव्य रूप से प्रभावित होकर अम्बपाली उनका वंदन करती है । आज उसे यथार्थ सुख की प्राप्ति हुई है :--

पधारो जन-गण-मन अधिराज ।
तेरे चरणों में बलि जाये त्रिभुवन का साम्राज्य ।
जन्म-जन्म के सार्थक मेरे स्वप्न हुए हैं आज ।
हुए कौन से साधन मेरे आज सफल कुतराज ।
सूखे- जीवन-वन के मग से आओ हे रसराज ।
रह -रहकर विस्मित विलोकता जिसको लोक समाज ।।[2]

---

१- राधा कृष्ण पृ० १ । २- अम्बपाली पृ० ५६

प्रार्थना :-

राधा-कृष्ण के दर्शन हेतु चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि वे अस्त न हों। यदि अस्त हो गए तो मिलन क्षण समाप्त हो जायगा और उसकी आन्तरिक शान्ति छिन जायगी। वह कहती है :---

निशाका नाश न हो, मिलन आनंदमय हो,
सुधा-स्रोत अविरल प्रवाह।
हो न निशा का अन्त,
मिलन हमारा मधुर सरस हो,
सुख से भरा अनंत ।
हे निशाकर! डूब न जाना
छल न कीजियो औ छिजकर
हो ऐसा सुधा-स्रोत यह,
रुके न किंचित क्षण भर ।।[1]

<u>ब्रजभाषा के कवि :</u>

यद्यपि छायावादी युग में खड़ी बोली में ही कविता लिखी जा रही थी परन्तु ब्रज भाषा की धारा किसी प्रकार मंद नहीं हुई थी। अनेक कवि अब भी अपनी पुरानी परम्परानुसार ब्रज भाषा में ही कविता कर रहे थे। इन कवियों की अधिकांश रचनाएं स्तोत्रात्मक हैं। इसीकी पुष्टि हेतु कुछ कवियों का स्तोत्र-साहित्य नीचे दिया जा रहा है :--

<u>कृष्ण बिहारी मिश्र :</u>

मिश्र जी की प्राप्त रचनाओं में अनेक स्तोत्रात्मक हैं और उनमें देशवासियों के कल्याण हेतु भगवान् से प्रार्थना की गई है :--

---

१- राधा कृष्ण --- पृ० १०

प्रभु-प्रार्थना :-

१- सावन में न भयौ बरसावनो भादौं भयावनो घूरि ।
खेत में धान त्यों प्रान किसान के सूखत दीख समान निघौरा ।।
लूट खसोट यहां मंहगी रनकारन सो समयौ विकरारो ।
आरत भारत गारत होत पुकारत, पाहि प्रभो दुखटारो ।।[1]

२- प्रभु कैसे तुम दीन दयाला ॥
छीन मलीन दीन तन दीसत बल विहीन बे हाल ।
सुधि बुधि थकित जकित मन अनमन असित जगत जंजाल ।
असन वसन बिन धन अनगन दुख विपदा कठिन कराल ।
कहा करैं कछु सोचि न आवै फुरत नास ततकाल ।
अधरम धरम धरम अधरम भो विछौ भरम को जाल ।
भरम छपावत सरम न लावत वृथा बजावत गाल ।
नसति सुरीति कुरीति प्रकासति दम्भ गाल को ख्याल ।
उन्नति हित नित अविरत रत सब चलत न एकौ चाल ।
है रावरो सहारो केवल कीजै सबल कृपाल ।
यथा नाम गुन तथा प्रकासौ करौ समाज निहाल ।
कहुक पूर्व गौरव प्रताप तौ चमकै भारत भाल ।।[2]

---प्रभु कैसे तुम दीन दयाल।।

उपर्युक्त दोनों रचनाओं में उच्चकोटि की स्तोत्रात्मक प्रवृत्ति विद्यमान है । इनमें कविने भारत की दैन्य दशा का यथार्थ वर्णन कर उद्धार की प्रार्थना की है ।

---

१- अवधवासी ११ मार्च १६१६

२- मर्यादा जुलाई १६१६ भाग १८ सं० १

## अवधी के कवि :

### द्वारिका प्रसाद मिश्र :

मिश्र जी का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कृष्णायन' है । इसमें महाभारत की कथा 'मानस' की शैली पर अवधी भाषा में लिखी गई है । इसमें कवि ने कृष्ण, बलराम, राधा, रुक्मिणी, मातृभूमि आदि की साथ-साथ अन्य अनेक देवी-देवताओं के भी स्तोत्र लिखे हैं । इस प्रकार के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :---

१- देव देव तुम यही अजानी ।
बिनु सामर्थ्य सकेहु नहिं जानी ।।
मागहुं अग्रज -प्राणन दाना ।
पुनि शरण ह्वयहु भगवाना ।।[१]

२- दीनबंधु ! जगदीश्वर ! स्वामी ! गोपी वल्लभ ! जन-अनुगामी ।
माधव! मधुसूदन, दुखहारी ! भक्त को तुम बिनु अब उद्धारी ।
रमानाथ ! ब्रजनाथ ! उबारहु ! बूड़ति नाव नाथ अब तारहु ।।[२]

३- मुकुट जासु हिमवंत चरण पखारत सिंधु नित ।
उन्नत जंह भगवन्त प्रणमहुं भारत भालु सोइ ।
जननि चरण जल जात, भक्ति सहित बंदहु बहुरि ।[३]
मधुपुर दिशि हरि जात, भार जासु दुसह हरन ।।

---

१- कृष्णायन पृ० २४६
२- कृष्णायन पृ० ४२७
३- कृष्णायन पृ० १२६

अनूदित स्तोत्र-साहित्यः

हिन्दी साहित्य में संस्कृत स्तोत्रों के अनुवाद की परम्परा से ही चली आ रही है । भक्ति काल और रीतिकाल में महाभारत, हरिवंश पुराण, जैमिनीय पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, गीत गोविन्द तथा श्री मद्भागवत आदि ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद अथवा रूपान्तर होते रहे हैं । इस प्रक्रिया में इन ग्रन्थों में आए हुए स्तोत्रों के अनुवाद स्वतः हो गए हैं । ऐसे अनुवादकों में गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव हैं जिन्होंने काशी नरेश की प्रेरणा से सम्पूर्ण महाभारत और हरिवंश का छंदोबद्ध अनुवाद किया है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में ---" इन तीनों महानुभावों ने मिलकर हिन्दी -साहित्य में बड़ा भारी काम किया है । इन्होंने समग्र महाभारत और हरिवंश (जो महाभारत का ही परिशिष्ट माना जाता है) का अनुवाद अत्यन्त मनोहर विविध छंदों में पूर्ण कवित्व के साथ किया है । कथा प्रबन्ध का इतना बड़ा काव्य हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ है ।[१] महाभारत और हरिवंश में जो स्तोत्र आए हैं इन कवियों ने उनके बड़े ही सरस अनुवाद प्रस्तुत किए हैं जिनमें मूल के औदात्य और भावना प्रवणता का पूरा पूरा निर्वाह हुआ है । मेघनाथ और हरिवल्लभ के श्रीमद्भगवतद्गीता के भाषानुवाद भी बड़े ही सुंदर हैं । हरिवल्लभ द्वारा गीता में आए हुए विराट रूप के स्तवन का बड़ा ही सरस अनुवाद प्रस्तुत किया गया है । समग्र ग्रन्थों के अनुवाद के साथ ही साथ केवल स्तोत्रों के अनुवाद की परम्परा भी बराबर चलती रही है । संस्कृत के अच्छे अच्छे स्तोत्रों के अनुवाद बराबर हिन्दी में होते रहे हैं । ऐसे अनूदित स्तोत्रों में गोपाल स्तवराज (श्री वृन्दावन चंद्रदास कृत) स्मरण मंगल स्तोत्रम् (श्री मद्रूप-गोस्वामीजी कृत) राधाकटाक्ष स्तोत्रम् आदि उल्लेखनीय हैं । आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेन्दु ने भी स्तोत्रों की यह अनुवाद-परम्परा अक्षुण्ण रखी । उन्होंने गीत गोविन्द तथा अन्य मनोरम स्तोत्रों के सरस अनुवाद किए हैं ।

---

१- आचार्य रामचंद्र शुक्ल-- हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ३३८

द्विवेदी जी ने भी 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' के आए हुए स्तोत्रों के अनुवाद किए हैं और यह परम्परा आजतक अखंडित रूप से चली आ रही है। वर्तमान काल के जिन कवियों ने स्तोत्रों के अनुवाद किये हैं उनमें से निम्न-लिखित उल्लेखनीय हैं :---

महादेवी वर्मा :

इनका स्थान सर्व श्रेष्ठ माना जा सकता है । इनके द्वारा किए गए अनुवादों में मूल भाव के अतिरिक्त इनकी कविता की मौलिकता तथा कलात्मकता प्रतिफलित हुई है ।

१- वाक अर्थ की शक्ति बोध का जो है कारण,
जननि चित्र की सुभग करूं मैं उसकी धारण ।
आशा मेरी पूत, सिद्धि से हो संयोजित ,
जान सकूं प्रज्ञा को, जो मन में है संस्थित ।।

--- सप्तपर्णा पृ० ११२

२- तिमिराच्छन्न गगन को करते घिरते आते हैं यह बादल,
घन तमाल वृक्षों की छाया से वन-भू लगती है श्यामल ।
रजनी के तम में होता है यह गोपाल भीति से उन्मन,
राधे! इसे धाम पहुंचादे, नंद महर से था निर्देशन।।
यमुना-तट के कुंज-पंथों पर जो चल देते स्नेह मुग्ध मन ।
उन दोनों राधा-माधव की जयति सदा मधु -क्रीडा पावन ।।

---- सप्त वर्णा पृ० २०६

---

१- आकूति देवी सुभगा पुरा दध,
चित्तस्य माता सुहवानो अस्तु ।
यामा शामेमि केवली सा
मे अस्तु विदेय येनां मनसि । --- प्रविष्टाम ।।

--- अथर्ववेद --१६-४ ।

२- मेघैर्मे दुरम्बरं वनभुव: श्याम: स्तमाल द्रुमै:

------क्रमश:

३- गिरा अर्थसम एक, जगत के माता पिता उमा वृषकेतु,
बन्दनकरता हूं मैं उनका गिरा अर्थ साधन के हेतु ।

महादेवी जी ने रघुवंश का भी स्तवन किया है :---

कहाँ सूर्य-सम्भव रघुवंश वह कहां बुद्धि मेरी यह क्षुद्र,
तरने चला मोहके वश मैं डोंगी लेकर महासमुद्र ।
मन्दबुद्धि कवि यश-प्रार्थी मैं मुझपर आज हंसेगा लोक ।[४]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला':

महाकवि निराला ने भी कुछ अनुवाद किए हैं जिनमें गोविन्ददास की पदावली और स्वामी विवेकानंद के 'सांग आर लाइट' का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है । गोविन्द दास जी बंगला-साहित्य के प्रमुख कवियों में हैं और उनकी पदावली बंगला भाषा में इतनी सरस है कि निराला जी ने उसका हिन्दी रूपान्तर बड़ी ही मधुर और कवित्वपूर्ण भाषा में किया है । अनुवाद करते समय अधिकांश स्थलों पर मूल कवि की मूलभावना का ही अनुसरण किया गया है । कुछ उदाहरण प्रमाणार्थ प्रस्तुत किए जा रहे हैं :--

---

(२- क्रमश: -- ) नैक्तं भीरू रयं त्वमैष्णतदि राधे । गृहं पापयं ।
इत्थं नंद निदेशतश्चलितयो: प्रत्यध्वकुन्जयुमं
राधा माधव यार्जयन्ति यमुना कूले रह: कैलय: ।।१।।
---गीत गोविंद ।

३- वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रति पत्तये ।
पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।१।।

४- सूर्य प्रभवोवंश: क्व चाल्प विषया मति: ।
तितीर्षु दुस्तरं मोह दुडुपेनास्मिसागरम् ।।२।।
मंद: कवियश: प्रार्थी गमिष्याम्युप हास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभा दुद्बाहुरिव वामन: ।।३।।--- रघुवंश प्रथम सर्ग

दुलकै दुति चंपक अंगन सौं अवनी बहि लावनी भामरही,
अधरान के हास-तरंगन सौं छवि मारहु की मुरझाय रही ।
सहि पैखल नागर जा छिन मैं सरि प्रेमकी बांध बहाय रही,
हरि नै हरि लीनी हमारो हियो विकलाई कलाई न लाय रही।
गल फूलति मालती-माल परी हिय-डोरन डोरन भावतरी,
उड़ि तास अलीन के वृंद अली लवलीन प्रसूनन धावतरी ।
हंसि हैरि मरोरल अंग अनंक तरंगनि रंग दिखावत री ,
धनु-भौंहन तान सरान नयानन कैबत प्रान न आवतरी ।।[१]

----अनुवाद गोविंददास ।

आधा-आध-अंगनि मिल्यौ सखि जब राधाकान्ह,
अर्द्ध भाल ससि देखिए, अर्द्ध भाल छबिमान ।
अर्द्ध गले कुंवर-सिरन मुक्ता, आधहिं माल,
अर्ध गौर तन देखिए, आधौ स्याम विसाल ।
पीताम्बर आधे तनुहिं, आधे नील निचौल,
आधे गुंज बाला लसत, आधे चुरियन -बोल ।
आधे अंगन हिलि रह्यौ, आधे घेरयौ बाहु,
दास गुविंद बखानिए ग्रस्यौ चंद्र जनु राहु ।।[२]

## डॉ० मुंशीराम शर्मा :

शर्मा जी ने ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के मंत्रों का बड़ा ही सरस अनुवाद किया है । हिन्दी रूपान्तर होने पर भी उनमें स्तोत्रात्मक भाव मूलरूप में विद्यमान है । निम्नलिखित उदाहरण में भगवान् का स्तवन हुआ है :--

---

१- निराला-- प्रबन्ध -प्रतिमा पृ० १७६

२- निराला-- प्रबन्ध -प्रतिमा पृ० १८६
--अनुवाद गोविन्ददास ।

१- नीचे गिराहुआ हूं प्रभुवर । हाथ पकड़ कर मुझे उठालो ।
पापी हूं मैं पतित पुरातन, जीवन देकर देव संभालो ।।
अवत भूमि से उठकर घेरे अन्तरिक्ष-खद्योत्र महान् ।
और भले ही बढ़कर ढकले स्वर्गलोक- आलोक- वितान ।।
सह न सकेगा किंतु बोझ वह अपना ही गिर जायेगा ।
सन्तापित कर स्वयं जनक को लौट उसीपर आयेगा ।।

डा० विनय मोहन शर्मा :

इन्होंने जयदेव के गीत-गोविंद का बड़ा ही सरस अनुवाद किया है। जयदेव की सरसता, माधुर्य एवं संगीतात्मकता किसी प्रकार कम नहीं होने पाई है :--

जय जगदीश हरे ।
२- प्रलय जलधि से नौ सम न्यारे, वेद उतारे शास्त्र संवारे,
केशव मत्स्य रूप रहे, जय जगदीश हरे ।
राजित पृष्ठे निज क्षिति विपुला, धरणि धरण-किण अंकित बहुल
केशव कच्छप रूप लहे, जय जगदीश हरे ।

---

१- उतदेवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्च क्रूर्ण देवा जीव यथा पुनः ।।
(ऋ० १०।१३७।१; अ० ४।१३(१)

अलद् भूम्या: समभवत् तथामति मह्द् व्यचः ।
तद् वै ततो विधू पायत् प्रत्यक् कर्तार मृच्छतु ।।
(अथर्व० ५।१६।६ )

२- प्रलय पयोधि जले धृत वानसि वेदम् विहित वहित्र चरित्रमखेदं ,
केशव धृतमीन शरीर जय जगदीश हरे ।।१।।
क्षिति रति विपुल तरे तव तिष्ठति पृष्ठे धरणि धरण किण चक्रगरिष्ठे
केशव धृतकच्छप रूप जय जगदीश हरे ।।२।।

दशन अग्रधरणी यह लग्ना, शोभित चंद्र कलंक निमग्ना ।
केशव शूकर रूप धरे, जय जगदीश हरे ।
अम्बुज कर खर नख से अपने हिरण्यकशिपु के हर प्राण गवाये ।
केशव नरहरि-रूप धरे, जय जगदीश हरे ।
छलित नृपति बलि अद्भुत वामन पद नख नीर हुए जन पावन ।
केशव वामन रूप धरे, जय जगदीश हरे ।

## कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह :

कुँवर साहब ने अनेक वैदिक मंत्रों एवं सूक्तों का हिन्दी अनुवाद किया है जिनमें भावों का माधुर्य एवं शब्द-विधान उच्च-कोटि का है । राष्ट्र-लक्ष्मी शीर्षक कविता में श्रीसूक्त का भावानुवाद करके लक्ष्मी का आह्वान किया गया है :—

अग्निदेव ! आह्वान करो उस श्री का अचला,
जाने जिसकी कला अनश्वर नर-उर अमला —
द्वार हैं जो प्रतिहार अश्व गजे गज से सज्जित,
रथ जो प्रतिवेशन क्षेम से नभ प्रपूरित ॥[1]
जिसके अग्र वदन्य बल रथी जो चलावेगा,
मध्य भाग में रौप्य रथों की गति-मति-अपना ।
हस्तिनाद से सुप्त राष्ट्र का शौर्य जगाती,
आवें आवें रमा अमर के मन भाती ।
श्री की जो अग्रजा अलक्ष्मी निकुल अपेक्षा ।

---

वसति दशन शिखरे धरणी तव लग्ना शशिनि कलंक कलेव निमग्ना ।
केशव धृत शूकर रूप जय जगदीश हरे ॥३॥ —— क्रमशः

—— गीतगोविंद ।

१— ऊँ ताम आवह जातवेदो लक्ष्मी मनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषा न हम् ॥
ऊँ अश्वपूर्वां रथ मध्यां हस्तिनाद प्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवी मुपह्वये श्री मा देवीजुषताम् ॥

क्षुधा-तृष्णा-दारिद्य रूपिणी करी विनष्टा,
जागे प्रतिगृहकला अकलपद्मा की श्रेष्ठा,
अग्निदेवदे करें भूति की अचल प्रष्ठिा ।।[3]
भक्तवत्सला पुष्टि रूपिणी पिंगल वर्णा,
गज शुंडोदधृत कल शतौघ अभिशिक्तं हिरण्या ।
सरसिज हारा पूर्णचंद्र शोभना शरण्या ।
लावें लक्ष्मी पुन: राष्ट्र में भूति अनन्या ।।[4]

उपर्युक्त रचना में मूल भाव की रक्षा हुई है ।

२- हे अग्नी हे देव! मनुज हम करते तुम्हें प्रणाम ।
ओज तेज के लिए नित्य हम करते तुम्हें प्रणाम ।
हमें ओज से और तेजसे भरदो हे विश्वेश ।
शत्रु हमारे इस ज्वाला में जलकर हों नि:शेष ।।१।।

हे अग्ने । तुम ही समस्त वैभव के स्वामी,
हव्यवाह । सब भोग तुम्हारे ही अनुगामी ।
हे अमर्त्य । तुम दूत-सदृश चिर पर उपकारी ,
हे यजिष्ठ । निज वेद-गिरा वंदना तुम्हारी ।।२।।

---

३- श्रीसूक्त-- ऊँ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिम समृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।

४- श्रीसूक्त-- ऊँ आर्द्रा पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदोम आवह ।।

२- १- नमस्ते अग्नओजसे गृणान्ति देव कृष्टय: ।
अमैरामित्र मर्दय ।। ऋ० ८-७५-१०।।

२- दूतं वो विश्व वेदसं हव्य वाहम मर्त्यम् ।
यजिष्टं मृंजसे गिरा ।। ऋ० ४-८-१ ।।

हविष्कृतो की गिरा नगिनियों सी पवित्र सहजात,
करती रहतीं व्यक्त तुम्हारे गुणग्राम अवदात ।
और प्राप्त होतीं हैं फिर वे तुमको ही स्वयमेव ,
हे सवर्ज्ञ ! सर्वव्यापक हे हे अग्ने हे देव ।।३।।

-- भारती ।

प्रगतिवाद-प्रयोगवाद- नयी कविता :

छायावाद के पश्चात् हिन्दी काव्य में जो नया मोड़ आया वह प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध है । प्रगतिवाद हिन्दी-काव्य की स्तोत्र-परम्परा के लिए निरर्थक सिद्ध हुआ । कारण स्तोत्र-रचना का मूल स्त्रोत्र है आस्था, श्रद्धा और विश्वास । प्रगतिवादी विचार धारा इन मानवीय गुणों के मूल्य को स्वीकार नहीं करती । यदि करती भी हैं तो एक अत्यंत संकुचित सीमाके भीतर । प्रगति -वाद का दार्शनिक आधार है मार्क्स द्वारा निरूपित द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ।यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विश्व में अधि -भौतिक के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की स्थिति स्वीकार नहीं करता । आधि-दैविक एवं आध्यात्मिक सत्ता की बात को यह आत्मप्रवंचना मात्र मानता है । इसके अनुसार संसार केवल पदार्थ अथवा Matter का बना हुआ है । इसमें जो कुछ दिखाई पड़ता है या पड़ सकता है वह सब पदार्थ अथवा Matter से निर्मित है। शरीर को संचालित करने वाली शक्ति मस्तिष्क है और वह भी शेषइन्द्रियों के समान भौतिक है । आत्मा नाम की वस्तु का कोई अस्तित्व ही नहीं है । कुछ मार्क्सवादी विद्वानों का मत है कि मस्तिष्क के आगे की विकसित अवस्था को आत्मा माना जा सकता है । * तात्पर्य यह कि संसार किसी ईश्वर या मनुष्य की सृष्टि नहीं । वही गतिशील पदार्थ की एक ऐसी जीवित अग्नि शिखा है जो अंशत: उर्द्ध विकास और अंशत: अध:पतन की ओर उन्मुख है । इस चिंतन पद्धति का निष्कर्ष यह है कि इस जगत में यदि कोई सत्

---

३८ उपत्वा जाम्यो गिरो देदि शती है विप्कृत:।
धा पीर नीक अस्थिरन् ।।

----भारती नवम्बर १९६१ ।

वस्तु है तो वह भौतिक जीवन ही है अन्य सब कुछ असत् है । सामाजिक जीवन में आर्थिक विधान का महत्व सर्वोपरि है । ईश्वर और आत्मा पर विश्वास अफी-मची की पिनक से अधिक महत्व नहीं रखता । इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस चिंतन के परिवेश में आस्था-प्रधान स्तोत्र अथवा स्तोत्रात्मक रचनाओं के विकास के लिए कोई गुंजाइश नहीं । अतएव प्रगतिवाद के उत्कर्ष के युग में स्तोत्र-रचना की धारा का मन्द से मन्दतर होते जाना सर्वथा स्वाभाविक था । इसका यह अर्थ नहीं कि प्रगतिवाद के उत्थान के युग में स्तोत्रात्मक साहित्य नहीं लिखा गया । लिखा वह अवश्य, पर प्रगतिवादी कवियों के द्वारा नहीं । उसके लेखक वे कवि थे जिनका रचनाकार्य द्विवेदी युग और छायावदा युग में प्रारम्भ हुआ था ।

प्रगति वादी साहित्य के सामाजिक चेतना मानते हैं । प्रगतिवाद के बाद हिन्दी-काव्य में जो नया मोड़ आया वह प्रयोगवाद के नाम से विख्यात हुआ । प्रयोगवाद काव्य को मुख्यत: वैयक्तिक अनुभूति का प्रकाशन मात्र मानता है । इसलिए प्रयोगवादियों की अधिकांश रचनाएं वैचित्र्य प्रियता के भद्दे प्रदर्शन के रूप में सामने आई हैं । यह वैचित्र्य-प्रियता भी ऐसी है जिसमें सामाजिक उत्तर - दायित्व की भावना सर्वथा तिरोहित हो गई । सम्भवत: काव्य में शिवत्व जैसी वस्तु इन प्रयोगवादियों को स्वीकार नहीं । यह प्रवृत्ति भी स्तोत्रात्मक रचना के परिवेश के प्रतिकूल पड़ती है । स्तोत्रात्मक रचनाओं में कवियों की व्यक्तिगत अनुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का मणिकांचन योग मिलता है। स्तोत्रकार एक ओर अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रति ईमानदार रहता है। तो दूसरी ओर (सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामय: ) का उद्घोष करता हुआ अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का भी समुचित निर्वाह करता है । अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त प्रयोगवादी कवियों में इस प्रकार की संतुलित सामंजस्य पूर्ण चेतना का प्राय: नितान्त अभाव है । इसलिए उनके द्वारा रचे हुए साहित्य में स्तोत्र की आस्था, श्रद्धा और स्तोत्र के तत्व भी नहीं मिलते । आचार्य वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि "प्रयोगवादी रचनाएं काव्य की चौहद्दी में पूरी तरह नहीं आती ।" ऐसे कवियों से स्तोत्र की आशा करना व्यर्थ है ।

उपर्युक्त प्रयोगवाद इधर कुछ दिनों से नई कविता के नाम से प्रचारित हो रहा है। अतएव उसमें भी रहस्यात्मक साहित्य का नितान्त अभाव है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के प्रवर्तन के साथ-साथ अरविन्द दर्शन का प्रभाव भी हिन्दी-काव्य पर पड़ने लगा। इस प्रभाव की छाया में जो काव्य लिखा गया उसमें रहस्यात्मक तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। हिन्दी में इस प्रभाव को ग्रहण करने वाले कवियों में सुमित्रानन्दन पंत सर्वोपरि स्थान रखते हैं। उनके काव्य का विवेचन किया जा चुका है। पंत जी के अनुयायी नरेन्द्र शर्मा ने भी इस प्रभाव को ग्रहण किया है और अपनी रचनाओं में उसे समुचित रूप से प्रयोग किया।